आचार्य श्री सकलकीर्ति विरचित

कर्म-विपाक

मूल सम्पादक-अनुवादक

ब्र. विनोद जैन 'शास्त्री'
श्री गुरुदत्त दिगम्बर जैन
उदासीन आश्रम, द्रोणगिरि
जिला-छतरपुर (म. प्र.)

डॉ. ब्र. अनिल जैन 'शास्त्री'
जैनदर्शनाचार्य,
प्राकृत-जैनागमाचार्य
श्री दिग. जैन उदासीन आश्रम, इन्दौर

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)

- **प्रेरणा** : परम पूज्य आर्यिका श्री विज्ञानमति माताजी
- **कृति** : कर्म विपाक
- **रचयिता** : आचार्य सकलकीर्ति
- **सम्पादक** : ब्र. विनोद जैन
  ब्र. अनिल जैन
- **संस्करण** : द्वितीय, जून, 2012
- **आवृत्ति** : 1000
- **पुण्यार्जक** : श्रीमान् कुंतीलाल जी गदिया
  61, सदर बाजार
  नसीराबाद (राज.)
- **प्राप्ति स्थान** : **धर्मोदय साहित्य प्रकाशन**
  बाहुबली कॉलोनी, सागर (म. प्र.)
  मो. नं. 94249-51771
  dharmodayat@gmail.com
- **मुद्रक** : विकास आफसेट, भोपाल

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	4
2.	आचार्य श्री सकलकीर्ति : एक परिचय	6
3.	मंगलाचरण	11
4.	कर्मों के भेद-प्रभेद	11
5.	प्रकृति बंध	44
6.	बंध-अबंध एवं बंध व्युच्छित्ति सारणी	55
7.	स्थिति बंध	59
8.	मूल-उत्तर प्रकृतियों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति सारणी	66
9.	अनुभाग बंध	71
10.	प्रदेश बंध	83
11.	उदय, अनुदय एवं उदय व्युच्छित्ति सारणी	100
12.	कर्म क्षपणा विधि	101
13.	सत्त्व, असत्त्व एवं सत्त्वव्युच्छित्ति सारणी	108
14.	अंतिम मंगलाचरण	110
15.	पाण्डुलिपियों का परिचय	111

सम्पादकीय

1997 में प्रकृति परिचय और सिद्धान्तसार नामक ग्रन्थों के प्रकाशन के कार्य से मेरा दिल्ली जाना हुआ था। उसी समय नया मंदिर धर्मपुरा, दिल्ली के दर्शनार्थ भी गया था। सुयोग से वहाँ के हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डार की सूची भी देखने को मिल गई। उसी भण्डार में आचार्य सकलकीर्ति विरचित कर्मविपाक देखने को मिला था। बहु प्रयास के फलस्वरूप इस ग्रन्थ की छाया प्रति भी मिल गई। मैं इस हस्तलिखित प्रति को अपने पास रखे रहा, पाण्डुलिपि की लिपि को पढ़ना कठिन-सा प्रतीत हुआ तथा ग्रन्थगत अशुद्धियों के कारण इस पर कार्य करना संभव नहीं हो सका। कुछ भण्डारों में खोज के पश्चात् यह ग्रन्थ नहीं मिला। इसी बीच 2002 में डॉ. कमलचन्द्र सोगाणी, अपभ्रंश साहित्य अकादमी जयपुर से दूरभाष पर वार्ता हुई और उन्होंने कर्मविपाक ग्रन्थ आमेर के ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध होने की बात कही, आपने उस ग्रन्थ की एक छाया प्रति भी भेज दी। इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर हमने ब्र. अनिलजी के साथ कार्य प्रारम्भ किया, किन्तु निर्दोष सम्पादन होने की संभावना नहीं दिखाई दी, क्योंकि दोनों ही प्रतियों में पर्याप्त अशुद्धियाँ थीं। ग्रन्थ सामान्यतः अपनी हस्तलिपि में लिख लिया। इसी बीच ब्र. अनिलजी का महाराष्ट्र जाना हुआ- वहाँ नातेपुते (महाराष्ट्र) से इस ग्रन्थ की तीसरी प्रति मिल गई। इन तीनों प्रतियों के आधार पर इस ग्रन्थ का कार्य किया और फलस्वरूप कार्य पूर्ण हो गया। पहले हमारा भाव बिना अनुवाद के प्रकाशन का था, किन्तु गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी से इस विषय में वार्ता हुई तो आपने कहा कि संभव हो तो अनुवाद सहित ही प्रकाशन करो। गुरुजी का आशीष प्राप्त कर, अनुवाद का कार्य हम लोगों ने प्रारम्भ कर दिया। शीघ्र ही कार्य पूर्ण हो गया। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। प्रथम बार ही अनुवाद सहित इसका प्रकाशन हो रहा है।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य : कर्मविपाक नामक यह ग्रन्थ लघुकाय होते हुए भी महत् विषय का प्रतिपादन करता है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने कर्म प्रकृतियों के भेद निरूपण कर, उनके नाम दिए हैं, पश्चात् प्रत्येक भेद की परिभाषा दी है, कर्म प्रकृतियों के विवेचन के पश्चात् कर्मों की उत्कृष्ट-जघन्य स्थिति, अनुभाग बन्ध, प्रदेश बंध और कर्मों के आस्रव के कारण तथा कर्मक्षय प्रक्रिया निरूपण की है। अंत में सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर ग्रन्थकार ने ग्रन्थ को पूर्ण किया है।

ग्रन्थ की विशेषताएँ : कर्मकाण्ड को छोड़कर, यह प्रथम ग्रन्थ है, जिसमें संक्षेप से चतुर्विध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग एवं प्रदेश बंध का निरूपण पाया जाता है।

ग्रन्थ के विचारणीय बिन्दु :

1. अनंतानुबंधी कषाय को सम्यक्त्व एवं देश संयम का घातक कहा है, अन्यत्र अनंतानुबंधी कषाय को सम्यक्त्व को घात करने वाली मात्र कहा गया है। यह विषय विशेष रूप से अन्वेषणीय है।

2. ग्रन्थ में प्रकृति-बंध प्रकरण में कर्मबंध-अबंध का निरूपण है, अंत में कर्म क्षपणा विधि संक्षेप से प्ररूपित है। प्रकृति बंध में कर्म बंध व्युच्छित्ति का कथन क्यों नहीं किया? आचार्य महाराज ने उदय अनुदय व्युच्छित्ति तथा सत्त्व त्रिभंगी को भी नहीं कहा है?

3. प्रदेश बंध के प्रकरण में ज्ञानावरणादि कर्मों के आस्रव के कारणों का निरूपण किया गया है। कर्म आस्रव के कारणों का प्रदेश बंध के अंतर्गत क्यों ग्रहण किया? अन्यत्र आस्रव के कारणों को बंध प्रत्यय प्रकरण में सम्मिलित किया गया है।

4. ग्रन्थकार ने अयोगकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय में असाता वेदनीय की सत्त्व व्युच्छित्ति की है तथा चरम समय में साता वेदनीय की सत्त्व व्युच्छित्ति की है, अन्यत्र द्विचरम समय में, सातावेदनीय, असातावेदनीय इन दोनों में से किसी एक की व्युच्छित्ति की गई है और चरम समय भी यही व्युच्छित्ति की प्रक्रिया है।

इस सम्पूर्ण कार्य का श्रेय आचार्य गुरुवर विद्यासागर एवं श्री डॉ. पन्नालाल 'साहित्याचार्य' को जाता है, क्योंकि आपकी सत्कृपा के बिना यह गुरुतर जिनवाणी की सेवा का अवसर हम लोगों को प्राप्त ही नहीं होता। आप दोनों का आशीष हम लोगों पर सदा बना रहे, जिससे निरंतर हम लोग स्व-पर हितकारी कार्यों में संलग्न रहें।

इस ग्रन्थ के प्रथम संस्करण का प्रकाशन परम पूज्य उपाध्याय श्री निर्णयसागर जी महाराज के आशीर्वाद से निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला से हुआ था। द्वितीय संस्करण का प्रकाशन परम पूज्य आर्यिका श्री विज्ञानमति माताजी के आशीर्वाद से धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर से हो रहा है। इस कार्य के लिए हम लोग प. पू. माताजी के हृदय से आभारी हैं तथा भावना करते हैं कि परम पूज्य माताजी जी की अप्रकाशित कृतियों के प्रकाशन की इसी प्रकार रुचि बनी रहे। इसके प्रूफ संशोधन में परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्यसागरजी महाराज ने तथा ग्रन्थ के सुन्दर प्रकाशन में डॉ. ब्र. भरत भैया ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस कार्य के लिए हम लोग परम पूज्य मुनि श्री के एवं भैयाजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

ब्र. विनोद जैन, डॉ. ब्र. अनिल जैन

आचार्य श्री सकलकीर्ति : एक परिचय

विपुल साहित्य निर्माण की दृष्टि से आचार्य सकलकीर्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने संस्कृति एवं प्राकृत वाङ्मय को संरक्षण ही नहीं दिया, अपितु उसका पर्याप्त प्रचार और प्रसार भी किया। हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में ब्रह्मजिनदास ने इनको महाकवि कहा है -

तत्पट्टपंकजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवरः प्रतापी।

महाकवित्यादिकलाप्रवीणः तपोनिधिः श्रीसकलादिकीर्तिः॥

इससे स्पष्ट है कि इनकी प्रसिद्धि महाकवीश्वर के रूप में थी। आचार्य सकलकीर्ति ने प्राप्त आचार्य परम्परा का सर्वाधिक रूप में पोषण किया है। तीर्थयात्रायें और जनसामान्य में धर्म के प्रति जागरुकता उत्पन्न की और नवमंदिरों का निर्माण कराकर प्रतिष्ठाएँ करायीं। आचार्य सकलकीर्ति ने अपने जीवनकाल में 14 जिनबिम्ब प्रतिष्ठाओं का संचालन किया था। गलियाकोट में संघपतिमूलराज ने इन्हीं के उपदेश से चतुर्विंशति जिनबिम्ब की स्थापना की थी। नागद्रह जाति के श्रावक संघपति ठाकुर सिंह ने भी कितनी ही जिनबिम्ब प्रतिष्ठाओं में योगदान दिया। आबू में इन्होंने एक प्रतिष्ठा महोत्सव का संचालन किया था, जिसमें तीन चौबीसी की एक विशाल प्रतिमा परिकर सहित स्थापित की गई थी।

निःसंदेह आचार्य सकलकीर्ति का असाधारण व्यक्तित्व था। तत्कालीन संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी आदि भाषाओं पर अपूर्व अधिकार था। भट्टारक सकलभूषण में अपने उपदेशरत्नमाला नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में सकलकीर्ति को अनेक पुराण ग्रन्थों का रचयिता लिखा है। भट्टारक शुभचन्द्र ने भी सकलकीर्ति को पुराण और काव्य ग्रन्थों का रचयिता बताया है। लिखा है-

''तच्छिष्याग्रेसरानेकशास्त्रपयोधिपारप्राप्तानाम्, एकावलि-द्विकावलि-कनकावलि- रत्नावलि-मुक्तावलि-सर्वतोभद्र-सिंह-विक्रमादिमहातपो वज्रनाशितकर्मपर्वतानाम्, सिद्धान्तसार-तत्त्वसार-यत्याचारद्यनेकराद्धान्तविधातृणाम्, मिथ्यात्वतमो विनाशैक-मार्त्तण्डानाम्, अभ्युदय-पूर्व-निर्वाण-सुखावश्यविधायि-जिन-धर्माम्बुधिविवर्द्धनपूर्ण-चन्द्राणाम्, यथोक्तचरित्राचरण-समर्थन-निर्ग्रन्थाचार्यावर्याणाम् श्रीश्रीश्रीसकलकीर्ति-भट्टारकाणाम्।''

अर्थात् पद्मनंदि के शिष्य, अनेक शास्त्रों के पारगामी, एकावलि, द्विकावलि, रत्नावलि, मुक्तावलि, सर्वतोभद्र, सिंहविक्रम आदि महातपों के आचरण द्वारा कर्म रूपी पर्वतों को नष्ट करने वाले, सिद्धान्तसार, तत्त्वसार, यत्याचार आदि आगम ग्रन्थों के रचयिता, मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य तुल्य, जिनधर्म रूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमा तुल्य और यथोक्त चारित्र का पालन करने वाले निर्ग्रन्थाचार्य सकलकीर्ति हुए।

अतः स्पष्ट है कि निर्ग्रन्थाचार्य सकलकीर्ति एक बड़े तपस्वी, ज्ञानी धर्म प्रचारक और ग्रन्थ रचयिता थे। उस युग में अद्वितीय प्रतिभाशाली एवं शास्त्रों के पारगामी थे।

आचार्य सकलकीर्ति का जन्म वि. सं. 1443 (ई. सन् 1386) में हुआ था। इनके पिता का नाम कर्मसिंह और माता का नाम शोभा था। ये हूंवड़ जाति के थे और अणहिलपुर पट्टन के रहने वाले थे। गर्भ में आने के समय माता को स्वप्नदर्शन हुआ था। पति ने इस स्वप्न का फल योग्य, कर्मठ और यशस्वी पुत्र की प्राप्ति का होना बतलाया था।

बालक का नाम माता-पिता ने पूर्णसिंह या पूनसिंह रखा था। एक पट्टावली में इनका नाम 'पदार्थ' भी पाया जाता है। इनका वर्ण राजहंस के समान शुभ्र और शरीर 32 लक्षणों से युक्त था। पाँच वर्ष की अवस्था में पूर्णसिंह का विद्यारंभ संस्कार सम्पन्न किया गया। कुशाग्रबुद्धि होने के

कारण अल्पसमय में ही शास्त्राभ्यास पूर्ण कर लिया। माता पिता ने 14 वर्ष की अवस्था में ही पूर्ण सिंह का विवाह कर दिया। विवाहित हो जाने पर भी इनका मन सांसारिक कार्यों के बंधनों में न बंध सका। पुत्र की इस स्थिति से माता-पिता को चिंता उत्पन्न हुई और उन्होंने समझाया-''अपार सम्पत्ति है, इसका उपभोग युवावस्था में अवश्य करना चाहिए। संयम प्राप्ति के लिए तो अभी बहुत समय है। यह तो जीवन के चौथेपन में धारण किया जाता है। पिता-पुत्र के बीच में जो वार्तालाप हुआ उसे भट्टारक भुवनकीर्ति ने निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया है -

देखवि चंचल चित्त माता पिता कहि बछ सुणि।
अहम् मंदिर बहू वित्त आविसिह कारणि कवइ॥
लहुआ लीलावंत सुख भोगवि संसार तणाए।
पछइ दिवस बहूत, अछिह संयम तप तणाए॥
वयणि तं जि सुणेवि पुत्र पिता प्रति हम कहिए।
निजमन सुविस करेवि धीर जे तरणि तप गहिए॥
ज्योवन गिर गमार पछइ पालइ शीयल घणां।
ते कुहु कवण विचार विण अवसर जे वरसीयिए॥

कहा जाता है कि माता-पिता के आग्रह से ये चार वर्षों तक घर में रहे और 18 वें में प्रवेश करते ही वि.सं. 1463 (ई.सन् 1406) में समस्त सम्पत्ति का त्याग कर भट्टारक पद्मनन्दि के पास नेणवां चले गए। 34 वें वर्ष मे आचार्य पदवी धारण कर अपने प्रदेश मे वापस आये और धर्मप्रचार करने लगे। इस समय ये नग्नावस्था में थे।

आचार्य सकलकीर्ति ने बागड़ और गुजरात में पर्याप्त भ्रमण किया था और धर्मोपदेश देकर श्रावकों में धर्म भावना जागृत की थी। उन दिनों में उक्त प्रदेशों में दिगम्बर जैन मंदिरों की संख्या भी बहुत कम थी तथा साधुओं के न पहुँचने के कारण अनुयायियों में धार्मिक शिथिलता आ

गयी थी। अतएव इन्होंने गाँव-गाँव में विहार कर लोगों के हृदय में स्वाध्याय और भगवद् भक्ति की रुचि उत्पन्न की।

बलात्कारगण ईडर शाखा का आरम्भ भट्टारक सकलकीर्ति से ही होता है। ये बहुत ही मेधावी, प्रभावक, ज्ञानी और चारित्रवान थे। बागड़ देश में जहाँ कहीं पहले कोई प्रभाव नहीं था, वि.सं. 1492 में गलियाकोट में भट्टारक गद्दी की स्थापना की तथा अपने आपको सरस्वतीगच्छ एवं बलात्कारगण से सम्बोधित किया। ये उत्कृष्ट तपस्वी और रत्नावली, सर्वतोभद्र, मुक्तावली आदि व्रतों का पालन करने में सजग थे।

स्थितिकाल - भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा वि.सं. 1490 (ई.सन् 1433) वैशाख शुक्ला नवमी शनिवार को एक चौबीसी मूर्ति; विक्रम सम्वत् 1492 (ई. सन् 1435) वैशाख कृष्ण दशमी को पार्श्वनाथमूर्ति, सं. 1494 (ई. सन् 1437) वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को आबू पर्वत पर एक मंदिर की प्रतिष्ठा करायी गयी। जिसमें तीन चौबीसी प्रतिमाएँ परिकर सहित स्थापित की गयीं थीं। वि.सं. 1497 (ई.सन् 1440 में) एक आदिनाथ स्वामी की मूर्ति तथा सागवाड़ा में आदिनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा करायी थी। इसी स्थान में आपने भट्टारक धर्मकीर्ति का पट्टाभिषेक भी किया था।

भट्टारक सकलकीर्ति ने अपनी किसी भी रचना में समय का निर्देश नहीं किया है तो भी मूर्तिलेख आदि साधनों के आधार पर से उनका निधन वि. सं. 1499 पौष मास में महसाना (गुजरात) में होना सिद्ध होता है। इस प्रकार उनकी आयु 56 वर्ष की आती है।

'भट्टारकसम्प्रदाय' ग्रन्थ में विद्याधर जोहरापुरकर ने इनका समय वि.सं. 1450-1510 तक निर्धारित किया है। पर वस्तुतः इनका स्थितिकाल वि.सं. 1443-1499 तक आता है।

रचनाएँ - आचार्य सकलकीर्ति संस्कृत भाषा के प्रौढ़ पंडित थे। इनके द्वारा लिखित निम्नलिखित रचनाओं की जानकारी प्राप्त होती है।

1. शान्तिनाथचरित
2. वर्द्धमानचरित
3. मल्लिनाथचरित
4. यशोधरचरित
5. धन्यकुमारचरित
6. सुकमालचरित
7. सुदर्शनचरित
8. जम्बूस्वामीचरित
9. श्रीपालचरित
10. मूलाचारप्रदीप
11. प्रश्नोत्तरोपासकाचार
12. आदिपुराण-वृषभनाथ-चरित
13. उत्तरपुराण
14. सद्भाषितावली-सूक्तिमुक्तावली
15. पार्श्वनाथपुराण
16. सिद्धान्तसारदीपक
17. व्रतकथाकोष
18. पुराणसार संग्रह
19. कर्मविपाक
20. तत्त्वार्थसारदीपक
21. परमात्मराजस्तोत्र
22. आगमसार
23. सारचतुर्विंशतिका
24. पञ्चपरमेष्ठी पूजा
25. अष्टाह्निका पूजा
26. सोलहकारण पूजा
27. द्वादशानुप्रेक्षा
28. गणधरवलय पूजा
29. समाधिमरणोत्साहदीपक

राजस्थानी भाषा में लिखित रचनाएँ -

1. आराधना प्रतिबोधसार
2. नेमीश्वर-गीत
3. मुक्तावली-गीत
4. णमोकार-गीत
5. पार्श्वनाथाष्टक
6. सोलहकारणरासो
7. शिखामणिरास
8. रत्नत्रयरास

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

कर्मविपाकः

जिनेन्द्रान् धर्मचक्रांकान् हतघातिरिपून् परान्।
नष्टाष्टकर्मकायांश्च सिद्धान्साधून् गुणाकरान् ॥ 1 ॥
कर्मारिघातनोद्युक्तान् नत्वा मूर्ध्ना च भारतीं।
वक्ष्ये कर्मविपाकाख्यं ग्रंथं कर्मारिहानये ॥ 2 ॥
आदौ प्रकृतिबंधोऽनुस्थितिबंधाभिधस्ततः।
अनुभागः प्रदेशाख्य इति बंधश्चतुर्विधः ॥ 3 ॥
ज्ञानावरणमेवादौ पंचधा नवधा पुनः।
दर्शनावरणं कर्मवेदनीयं द्विधा ततः ॥ 4 ॥
अष्टाविंशतिभेदं मोहनीयमायुरेव हि।
चतुर्धा नाम द्विचत्वारिंशद्भेदं सुसंग्रहात् ॥ 5 ॥
विस्तारा अधिकं वा नवति भेदप्रमं द्विधा।
गोत्रं कर्मांतरायं पंचधेति कर्मसंचयः ॥ 6 ॥

अर्थ- अष्टकर्मों के समूह का नाश करने वाले सिद्धों, घातिया कर्मों का नाश करने वाले एवं धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाले तीर्थङ्करों, कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने के लिए उद्यत तथा गुणों के भण्डार स्वरूप साधुओं और द्वादशांग जिनवाणी को सिर से नमस्कार कर कर्म रूपी शत्रुओं को नाश करने के लिए कर्म विपाक नाम का ग्रन्थ कहूँगा॥ 1-2 ॥

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध के भेद से कर्म बंध चार प्रकार का है॥ 3 ॥

ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, वेदनीय 2, मोहनीय 28, आयु4, नामकर्म 42 अथवा और अधिक 93, गोत्र 2 और अंतराय के 5 इस प्रकार कर्मों के 148 भेद जानना चाहिए॥ 4-6 ॥

अथैतेषां कर्मणामुत्तरप्रकृतिं निरूपयामि-

मतिज्ञानावरणं श्रुतज्ञानावरणं अवधिज्ञानावरणं मनःपर्यय-ज्ञानावरणं केवलज्ञानावरणं पंचधेति ज्ञानावरणम्।

चक्षुर्दर्शनावरणं अचक्षुर्दर्शनावरणं अवधिदर्शनावरणं केवल-दर्शनावरणं निद्रा-निद्रा निद्रा प्रचला-प्रचला प्रचला स्त्यानगृद्धिः इति नव प्रकारं दर्शनावरणं।

सातावेदनीयं असातावेदनीयं द्विधेति वेदनीयम्।

दर्शनमोहनीयं चारित्रमोहनीयं द्विधेति मोहनीयम्। मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं त्रिविधमिति दर्शनमोहनीयं। कषायवेदनीयं नोकषायवेदनीयं द्विधेति चारित्रमोहनीयम्।

अब कर्मों की उत्तरप्रकृतियों का निरूपण करता हूँ -

मति ज्ञानावरण, श्रुत ज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण एवं केवल ज्ञानावरण इस प्रकार ज्ञानावरण कर्म पाँच प्रकार का है।

चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रानिद्रा, निद्रा, प्रचलाप्रचला, प्रचला एवं स्त्यानगृद्धि इस प्रकार दर्शनावरण कर्म नौ प्रकार का है।

सातावेदनीय और असातावेदनीय इस प्रकार वेदनीय कर्म दो प्रकार का है।

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय, इस प्रकार मोहनीय कर्म दो प्रकार का है।

दर्शनमोहनीय तीन प्रकार का है- मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति।

चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकार का है- कषायवेदनीय और नोकषाय वेदनीय।

अनंतानुबंधि-क्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-मायालोभाः प्रत्याख्यानावरण-क्रोधमानमायालोभाः संज्वलन-क्रोधमानमायालोभाः षोडशप्रकारमिति कषायवेदनीयम्। हास्यः रतिः अरतिः शोकः भयः जुगुप्सा स्त्रीवेदः पुंवेदः नपुंसकवेदः नवविधमिति नोकषायवेदनीयं। नरकायुः तिर्यगायुः मनुष्यायुः देवायुः चतुर्धेत्यायुः।

नरकगतिनाम तिर्यग्गतिनाम मनुष्यगतिनाम देवगतिनाम चतुर्धेति गतिनाम। एकेन्द्रियजातिनाम द्वीन्द्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिन्द्रियजातिनाम पंचेन्द्रियजातिनाम पंचधेति जातिनाम। औदारिक-शरीरनाम वैक्रियिकशरीरनाम आहारकशरीरनाम तैजसशरीरनाम कार्मण शरीरनाम पंचधेति शरीरनाम।

औदारिकशरीरांगोपांगनाम वैक्रियिकशरीरांगोपांगनाम आहारक

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ एवं संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ इस प्रकार कषायवेदनीय 16 प्रकार का है।

नोकषायवेदनीय नव प्रकार का है- हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

आयुकर्म चार प्रकार का है- नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु।

नामकर्म 93 प्रकार का है- नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति इस प्रकार गतिनामकर्म चार प्रकार का है।

जाति नामकर्म पाँच प्रकार का है- एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पञ्चेन्द्रिय जाति।

शरीर नामकर्म पाँच प्रकार का है- औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारक शरीर, तैजसशरीर और कार्मण शरीर।

शरीर आंगोपांग नामकर्म तीन प्रकार का है- औदारिक शरीर आंगोपांग, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग और आहारक शरीर आंगोपांग।

-शरीरांगोपांगनाम त्रिधेति शरीरांगोपांगनाम। निर्माणनाम। औदारिक-शरीरबंधननाम वैक्रियिकशरीरबंधननाम आहारकशरीरबंधननाम तैजस-शरीरबंधननाम कार्मणशरीरबंधननाम पंचधेति शरीरबंधननाम। औदारिकशरीरसंघातनाम वैक्रियिकशरीरसंघातनाम आहारकशरीर-संघातनाम तैजसशरीरसंघातनाम कार्मणशरीरसंघातनाम पंचधेति-शरीरसंघातनाम। समचतुरस्रशरीरसंस्थाननाम न्यग्रोधपरिमंडलशरीर-संस्थाननाम स्वातिशरीरसंस्थाननाम वामनशरीर संस्थाननाम कुब्जक-शरीर-संस्थाननाम हुंडकशरीरसंस्थाननाम षट्विधमिति शरीरसंस्थाननाम।

वज्रवृषभनाराचशरीरसंहनननाम वज्रनाराचशरीरसंहनननाम नाराचशरीरसंहनननाम अर्द्धनाराचशरीरसंहनननाम कीलकशरीर-संहनननाम असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनननाम षट्प्रकारमितिशरीर-संहनननाम। कर्कशनाम मृदुनाम गुरूनाम लघुनाम स्निग्धनाम रूक्षनाम

निर्माण नामकर्म, शरीर बन्धन नामकर्म पाँच प्रकार है- औदारिक शरीर बन्धन नामकर्म, वैक्रियिक शरीर बन्धन नामकर्म, आहारक शरीर बन्धन नामकर्म, तैजस शरीर बन्धन नामकर्म और कार्मण शरीर बन्धन नामकर्म।

शरीर संघात नामकर्म पाँच प्रकार का है- औदारिक शरीरसंघात नामकर्म, वैक्रियिक शरीरसंघात नामकर्म, आहारक शरीरसंघात नामकर्म, तैजस शरीरसंघात नामकर्म और कार्मण शरीरसंघात नामकर्म।

शरीर संस्थान नामकर्म छह प्रकार का है- समचतुरस्र संस्थान नामकर्म, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नामकर्म, कुब्जक संस्थान नामकर्म, स्वाति संस्थान नामकर्म, वामनसंस्थान नामकर्म और हुण्डक संस्थान नामकर्म।

संहनन नामकर्म छह प्रकार का है- वज्रवृषभनाराच संहनन नामकर्म, वज्रनाराचसंहनन नामकर्म, नाराच संहनन नामकर्म, अर्धनाराचसंहनन नामकर्म, कीलक शरीर संहनन नामकर्म, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नामकर्म।

स्पर्शनामकर्म के आठ भेद हैं- कठोर, मृदु, गुरु, लघु, रूक्ष, स्निग्ध, शीत और उष्ण।

शीतनाम उष्णनाम अष्टविधमितिस्पर्शनाम। तिक्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम पंचधेतिरसनाम। कृष्ण-नील-रुधिर-पीत-शुक्ल-पंचधेतिवर्णनाम। सुगंध-दुर्गंध-द्विधा-गंधनाम। नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्व्यनाम मनुष्यगतिप्रायोग्यानु-पूर्व्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम चतुर्धेतिप्रायोग्यानुपूर्व्यनाम। अगुरुलघुनाम। उपघातनाम। परघातनाम। आतपनाम। उद्योतनाम। उच्छ्वासनाम। प्रशस्तविहायोगतिनाम। अप्रशस्तविहायोगतिनाम। प्रत्येकशरीरनाम। साधारणशरीरनाम। त्रसनाम।

स्थावरनाम। सुभगनाम। दुर्भगनाम। सुस्वरनाम। दुःस्वरनाम। शुभनाम। अशुभनाम। सूक्ष्मनाम। बादरनाम। पर्याप्तिनाम। अपर्याप्ति-नाम। स्थिरनाम। अस्थिरनाम। आदेयनाम। अनादेयनाम। यशः-कीर्तिनाम। अयशःकीर्तिनाम। तीर्थंकरत्वनाम। त्रिनवतिप्रकारं नाम-

रसनामकर्म के पाँच भेद हैं- तिक्त, कटुक, कषायला, आम्ल और मधुर रस।

गंध नामकर्म दो प्रकार का है- सुगंध एवं दुर्गंध।

वर्ण नामकर्म पाँच प्रकार का है- कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल।

आनुपूर्वी नामकर्म चार प्रकार का है- नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी। अगुरूलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक शरीर नामकर्म, साधारण शरीर नामकर्म, त्रसनामकर्म।

स्थावर नामकर्म, सुभग नामकर्म, दुर्भगनामकर्म, सुस्वर नामकर्म, दुःस्वरनामकर्म, शुभनामकर्म, अशुभनामकर्म, सूक्ष्मनामकर्म, बादर नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म, अपर्याप्त नामकर्म, स्थिर नामकर्म, अस्थिर नामकर्म, आदेय नामकर्म, अनादेय नामकर्म, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थङ्करनामकर्म।

कर्मेति। उच्चैर्गोत्रं नीचैर्गोत्रं द्विधेति गोत्रं।

लाभांतरायः दानांतरायः भोगांतरायः उपभोगांतरायः वीर्यांतरायः पंचधेत्यंतरायः एवमष्टचत्वारिंशदधिकशतमुत्तरप्रकृतयो विज्ञेयाः।

अथ तासां कर्मप्रकृतिनां स्वभावं व्यावर्णयामि। अवग्रहेहादि षट्त्रिंशदधिकत्रिंशत्-प्रमान् मतिज्ञानभेदानावृणोतीतिमतिज्ञानावरणं। ये केचन ग्रहिलाविकलाबधिराबुद्धिहीनाश्चात्र भवंति ते मतिज्ञानावरणोदयेनैव।

पर्याय-पर्यायसमासादिविंशतिसंख्यान् श्रुतज्ञानभेदाना-वृणोतीतिश्रुतज्ञानावरणकर्म। ये मूकामूर्खाश्चात्र स्युः ते श्रुतज्ञाना-वरणोदये-नैव। रूपीद्रव्य-भवांतर-प्रत्यक्ष-परिच्छेद-कानुगाम्यननुगामि-वर्द्धमान हीयमानावस्थितानवस्थित-भेदभिन्नषट्विधावधिज्ञानाच्छादक-

गोत्र कर्म दो प्रकार का है- उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

अंतराय कर्म पाँच प्रकार का है- लाभांतराय, दानांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

इस प्रकार कर्मों की एक सौ अड़तालीस प्रकृतियाँ जानना चाहिए। अब उन प्रकृतियों के स्वभाव का वर्णन करता हूँ।

अवग्रहादि 336 मतिज्ञान के भेदों को जो आवरण करता है, उसे मति ज्ञानावरण जानना चाहिए। मतिज्ञान के जितने भेद होते हैं, उतने ही आवरण जानना चाहिए।

ग्रहिल, विकल, बहरा तथा बुद्धिहीन जो लोग यहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। वे मति ज्ञानावरण कर्म के उदय से ही होते हैं।

जो कर्म पर्याय, पर्याय समास आदि 20 प्रकार के श्रुतज्ञान के भेदों को आवरण करता है, उसे श्रुतज्ञानावरण कर्म जानना चाहिए। यहाँ जो मूक और मूर्ख जन हैं, वे श्रुतज्ञानावरण कर्म के उदय के कारण हैं।

रूपी द्रव्य भवांतर को प्रत्यक्ष जानने वाला तथा अनुगामी, अननुगामी, वर्द्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित छह भेदों वाले

मवधिज्ञानावरणं। सूक्ष्म-पदार्थ-प्रत्यक्ष-परिज्ञायकं ऋजुविपुलमतिभेदेन द्विविधं मनःपर्ययज्ञानं तदावरणकारणं मनःपर्ययज्ञानावरणं द्विविधं उत्तरोत्तरप्रकृतिभेदेन। त्रिकालविषय-समस्तलोकालोक-द्रव्यगुणपर्याय-युगपत्-प्रत्यक्षप्रकाशकं केवलज्ञानमावृणोतीतिकेवलज्ञानावरणं।

यथा देवतामुखे पट आच्छादयति मेघपटलं वा भानुं तथा ज्ञानावरणकर्म हि आत्मज्ञानमाच्छदयति। रूपिद्रव्यावलोकनक्षमं चक्षुदर्शनं तदावरणकरं यत् कर्म तत् चक्षुदर्शनावरणं। येंऽधा दृश्यंते ते तस्यैव कर्मोदयेन। येन शेषचतुरिंद्रियमनोऽवलंबनेन यदवलोकनं तदचक्षुदर्शनं तस्याच्छादकं यत् कर्म तदचक्षुदर्शनावरणं। रूपिवस्तुसामान्यावलोकनमवधिदर्शनं

अवधिज्ञान को आच्छादित करने वाला कर्म अवधि ज्ञानावरण है।

सूक्ष्म पदार्थों को प्रत्यक्ष जानने वाला ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार के मनःपर्यय ज्ञान को आवरण करने वाला कर्म मनःपर्यय ज्ञानावरण है।

त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को तथा लोकालोक के द्रव्य, गुण एवं पर्यायों को एक समय में युगपत् जानने वाले ज्ञान को आवरण करने वाला कर्म केवल ज्ञानावरण है।

जिस प्रकार प्रतिमा के मुख पर वस्त्र प्रतिमा के मुख को तथा सूर्य केऊपर आये हुए मेघपटल सूर्य के प्रकाश को ढक देते हैं, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म को जानना चाहिए। वह आत्मा के स्वरूप को ढक देता है।

रूपी द्रव्य को देखने में समर्थता चक्षुदर्शन है। इस चक्षुदर्शन के आवरण करने वाले कर्म को चक्षुदर्शनावरण कहते हैं। यहाँ जो अंधे लोग दृष्टिगोचर होते हैं, वे चक्षुदर्शनावरण कर्म के उदय से हैं।

चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों और मन के द्वारा वस्तु का सामान्य ग्रहण अचक्षुदर्शन है, उसका आवरण करने वाला कर्म अचक्षुदर्शनावरण है। रूपी पदार्थों का सामान्य ग्रहण अवधिदर्शन है।

तस्यावरणमवधिदर्शनावरणम्। युगपत्-त्रिकालगतद्रव्यगुणपर्याय सहित-लोकालोक-सामान्यविशेषप्रकाशकेवलज्ञानाविनाभूतं केवलदर्शनं तस्यावरणं यत् कर्म तत् केवलदर्शनावरणं।

मदखेदक्लमविनाशार्थो यः स्वापः सा निद्रा तस्या जनकं यत् कर्म तत् निद्रादर्शनावरणम्। यः सुप्तः स्वल्पशब्दश्रवणेन जागर्ति तस्य निद्रा विज्ञेया। निद्राया उपर्युपरि या प्रवर्त्तमाना सा निद्रानिद्रा तस्याः कारणं निद्रानिद्रादर्शनावरणं। निद्रानिद्राकर्मोदयेन वृक्षाग्रे विसम-भूभौचांगी घोरयन् न घोरयन् वा निर्भरं शेते कष्टेन जागर्ति। या स्वापक्रियायामात्मानं प्रचलयति सा प्रचला। आसीनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका तस्या उत्पादकं यत् कर्म तत् प्रचला-दर्शनावरणं। प्रचलायास्तीव्रोदयेन वालुकाभृते इव लोचने भवतः गुरु-भारा-वष्टब्धमिव शिरो भवति।

उसका आवरण करने वाला अवधिदर्शनावरण है। युगपत् त्रिकालवर्ती द्रव्य, गुण और पर्याय सहित लोकालोक का सामान्य प्रकाशक केवलदर्शन हैं, उसके आवारक कर्म का नाम केवलदर्शनावरण है।

मद, खेद और परिश्रमजन्य थकावट को दूर करने के लिये नींद लेना निद्रा है। उस निद्रा को उत्पन्न करने वाला कर्म निद्रा दर्शनावरण है। जो सोया हुआ अल्प शब्द के द्वारा ही सचेत हो जाता है वह निद्रा है, इस निद्रा के ऊपर जो प्रवर्तमान है अर्थात् जो दूसरों के द्वारा उठाये जाने पर भी नहीं उठता है वह निद्रा-निद्रा है, इस निद्रानिद्रा का कारण निद्रा-निद्रा दर्शनावरण है।

निद्रा-निद्रा प्रकृति के तीव्र उदय से जीव वृक्ष के शिखर पर विषम भूमि पर घुरघुराता हुआ या नहीं घुरघुराता हुआ निर्भर अर्थात् गाढ़ निद्रा में सोता है। जो क्रिया आत्मा को चलायमान करती है वह प्रचला है, यह प्रचला बैठे हुये प्राणी के भी नेत्र, गात्र की विक्रिया की सूचक है, इसका उत्पादक जो कर्म है, वह प्रचला दर्शनावरण है। प्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से लोचन वालुका से भरे हुए के समान हो जाते है सिर गुरुभार

पुनः-पुनः लोचने उन्मीलयति निमीलियति पततमात्मानं धारयति प्राणी स्थितोऽपि शेते प्रचलैव। पुनः पुनः प्रवर्त्तमाना प्रचला-प्रचला तस्या जनकं यत् कर्म तत् प्रचलाप्रचलादर्शनावरणम्। प्रचला-प्रचलाया-स्तीव्रोदयेनासीनोत्थितो वा गलल्लालं मुखं पुनः शरीरं शिरश्च कंपयन्निर्भरं शेते। (पर्यटन् वा स्वप्ने) यद्वशादात्मा रौद्रं बहुदिवाकृत्यं कर्म करोति तत् स्त्यानगृद्धि-दर्शनावरणम्। स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणोदयेनोत्थापितोऽपि पुनः शीयते सुप्तोऽतिकर्म करोति दंतान् कटकटायमानः शेते। यथा प्रतीहारो राज्ञो दर्शनं कर्त्तुं न ददाति तथा दर्शनावरणं कर्मस्वात्मानं दृष्टुं न प्रयच्छति।

मनोज्ञान्नपानवस्त्राभरण-शुभ-शरीरादि-द्रव्यैः उत्तम-विमान धवलगृहादिदिव्यक्षेत्रैः शीतोष्णादिरहितसाम्यकालेन उपशम परिणामेन

को उठाये हुये के समान भारी हो जाता है, नेत्र पुनः पुनः उन्मीलन एवं निमीलन करने लगते हैं और आत्मा को पतित करती है। प्रचला के उदय से जीव बैठा हुआ भी सोता है। प्रचलाकर्म पुनः पुनः प्रवर्तमान होना प्रचला-प्रचला है, इस प्रचला प्रचला का उत्पादक कर्म प्रचला प्रचला दर्शनावरण है।

प्रचला प्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से बैठा या खड़ा हुआ मुँह से गिरती हुई लार सहित तथा बार-बार कंपते हुए शरीर और सिर से युक्त होता हुआ जीव निर्भर सोता है।

जिस कर्म के उदय से दिन में करने योग्य अन्य रौद्र कार्यों को रात्रि में कर डालता है, वह स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण है। स्त्यानगृद्धि के तीव्र उदय से उठाया गया भी जीव पुनः सो जाता है सोता हुआ भी कुछ क्रिया करता रहता है तथा सोते हुये भी बड़बड़ाता है और दाँतों को कड़कड़ाता है।

जैसे प्रतिहार राजा के दर्शन नहीं करने देता है वैसे दर्शनावरण कर्म भी स्वात्मा के सामान्य ग्रहण रूप दर्शन गुण को रोकता है।

मनोज्ञ अन्नपान, वस्त्र, आभूषण शुभ शरीरादि द्रव्य, उत्तम विमान

च देवगत्यादौ पुण्यवतां यत् कर्मसुखं करोति तत् सातावेदनीयं। यदुदयादात्मा नरकगत्यादौ तीव्रं दुःखं लभते विषकंटकाद्यनिष्टवस्तु कुत्सितदेहादिद्रव्यैः नरकबिलबंदिगृहादि-क्षेत्रैः शीतोष्णादिव्याप्तकालेन कषायाद्याकुलितभावेन रोगसमूहक्षुधातृषावधबंधादिभिश्च तदसात-वेदनीयं। यथा मधुलिप्तखड्ग धारा स्वादुना जिह्वायाः स्तोकं सुखं जनयति तत् कर्त्तनेन महादुःखं करोति तथा सातावेदनीयं देहिनां स्वल्पं शर्म विधत्ते असातवेदनीयं च घनतरं दुःखं कुरुते।

आप्तागमतत्त्वगुर्वादिषु निर्ग्रंथमोक्षमार्गे च रुचिः श्रद्धा दर्शनं तत् मोहयति विपरीतं करोति दर्शनमोहनीयं। यदुदयाददेवे देवबुद्धिः अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिः अगुरौ गुरुबुद्धिः अधर्मे धर्मबुद्धिः अगुणे गुणबुद्धिः विपरीता मतिश्च जायते तन्मिथ्यात्वं कौद्रवतुषरूपं। यथा ज्वरी शर्करादुग्धं कटुकं

श्वेतगृहादि दिव्य क्षेत्र, शीत उष्ण की बाधा रहित काल और उपशम परिणामों से पुण्यवान जीवों को देवादि गति में जो कर्म सुख को उत्पन्न करता है, वह सातावेदनीय है।

जिस कर्म के उदय से नरकादि गति में तीव्र दुःख प्राप्त होता है विष कंटक आदि अनिष्ट पदार्थ, कुत्सित शरीर आदि द्रव्य, नरक बिल काराग्रह आदि क्षेत्र, शीत उष्ण की बाधा से व्याप्त काल, कषाय आदि आकुलित भाव, व्याधि समूह क्षुधा तृषा वध बंधनआदि जन्य दुःख का अनुभव होता है, वह असाता वेदनीय है।

जैसे मधु से लिप्त तलवार स्वाद से जिह्वाजन्य अल्पसुख को उत्पन्न करती है और कटने से महा दुःख उत्पन्न करती है, उसी प्रकार सातावेदनीय कर्म प्राणियों को अल्प सुख उत्पन्न करता है। असातावेदनीय कर्म बहुत दुःख को उत्पन्न करता है।

आप्त, आगम, तत्त्व गुरु आदि एवं निर्ग्रन्थ मोक्ष मार्ग में प्रतीति श्रद्धा दर्शन है, उस श्रद्धा को जो विपरीत करता है, वह दर्शन मोहनीय कर्म है। जिस कर्म के उदय से अदेव में देव बुद्धि, अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि, अगुरु में गुरु बुद्धि इस प्रकार विपरीत बुद्धि होती है वह मिथ्यात्व है,

वेत्ति निंबादिकं च मधुरं जानाति तथा मिथ्यात्व-ज्वर-व्याप्तोंऽगी धर्मं पापं जानाति पापं धर्मं जानाति विकलवत् स्वेच्छया पदार्थानादत्ते न मनाग्विचार-चतुरो भवति। यस्य विपाकेनाप्तागम-पदार्थ निर्ग्रंथ-मोक्ष-मार्गादिषु श्रद्धायाः शैथिल्यं भवति तत् सम्यक्त्वप्रकृतिः कोद्रव-तंदुल-सदृशं। यस्योदयेनाप्तागम-तत्त्व-गुर्वादौ मिथ्यागमगुर्वादौ च निश्चय उत्पद्यते तत् सम्यग्मिथ्यात्वं अर्द्धशुद्ध-तंदुल-समानं। दुःख-सस्य-पूरितं कर्म-क्षेत्रं कृषंति फलवत् कुर्वंतीति कषायाः। अनंतान् भवान् मिथ्यात्वासंयमौ चानुबंधी शीलं येषां ते अनंतानुबंधिनः अथवा अनंतेषु भवेष्वनुबंधः संस्कारो विद्यते येषां ते अनंतानुबंधिनः सम्यक्त्वदेशसंयम-

---

कोदों के तुष के समान।

जैसे ज्वर पीड़ित व्यक्ति मधुर दुग्ध को कड़वा जानता है, निंब आदि को मधुर जानता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व ज्वर से पीड़ित प्राणी धर्म को पाप जानता है, पाप को धर्म मानता है। उन्मत्त पुरुष जिस प्रकार इच्छानुसार पदार्थों के स्वरूप को मानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव को जानना चाहिए।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम, पदार्थ, निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग में श्रद्धा शिथिल होती हैं वह सम्यक्त्व प्रकृति है। कोदों के चावल के समान।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम, तत्त्व, गुरु आदि तथा कुशास्त्र, कुदेव, कुगुरु आदि में युगपत् श्रद्धा उत्पन्न होती है, वह सम्यग्मिथ्यात्व कहलाता है। इसके उदय से अर्द्ध शुद्ध मदशक्ति वाले कोदों और ओदन के उपयोग से प्राप्त हुये मिश्र परिणाम के समान उभयात्मक परिणाम होता है।

दुःख रूपी धान्य से पूरित कर्म रूपी क्षेत्र को जो फलवती करती है वह कषाय है। अनन्त भवों तथा मिथ्यात्व, असंयम को बांधना ही जिनका स्वभाव है। वे अनन्तानुबंधी कहलाते हैं अथवा अनंत भवों में जिनका अनुबंध रूप संस्कार विद्यमान रहता है वे अनंतानुबंधी कहलाते

निरोधकाः। यस्योदयात्मा भवांतरेपि पाषाण-रेखा-निभं क्रोधं न त्यजति सोऽनंतानु बंधि क्रोधः। यद् विपाकेन जीवो भवांतरेपि स्वाभिमानं शैल-स्तंभ-समानं न मुंचति सोऽनंतानुबंधिमानः।

यस्या उदयेन प्राणी मरणेऽपि जातु तीव्रवक्रभावं वंचनपरिणामं वंशमूलतुल्यं न त्यजति सानंतानुबंधिमाया। यद्वशान्मिथ्यादृष्टि-र्मृत्युकालेऽपि कृमिरंगवत् किंचित् लोभं न त्यजेत् सानंतानुबंधिलोभः। अप्रत्याख्यानं संयामासंयममावृणोतीति अप्रत्याख्यानावरणाः देशसंयम घातिनः। यद् विपाकेनांगी हलरेखासमानं क्रोधं त्युक्तुमसमर्थो भवति सोऽप्रत्याख्यानक्रोधः। यस्योदयेन जीवानामस्थिसादृश्यो गर्वो जायते सोऽप्रत्याख्यानमानः। यद् वशाद्देहिनां मेषशृंगसमाना निकृतिर्वंचना मनसि भवति साऽप्रत्याख्यानमाया।

हैं। **''यह सम्यक्त्व एवं देश संयम का विनाश करने वाली कषाय है।''** जिसके उदय से आत्मा भवान्तर में भी पाषाण रेखा के सामान क्रोध को नहीं छोड़ता है, वह अनंतानुबंधी क्रोध है।

जिसके उदय से जीव भवांतर में भी शैल समान मान को नहीं छोड़ता है, वह अनंतानुबंधी मान है।

जिसके उदय से प्राणी का मरण होने पर भी वंश वृक्ष की मूल (जड़) के समान तीव्र माया रूप परिणाम को नहीं छोड़ता है, वह अनंतानुबंधी माया है।

जिसके उदय से मिथ्यादृष्टि मरण काल में भी कृमिरंग के समान लोभ का त्याग नहीं करता, वह अनंतानुबंधी लोभ है।

अप्रत्याख्यान संयमासंयम का नाम है उस अप्रत्याख्यान (संयमासंयम) को जो आवरण करता है वह अप्रत्याख्यानावरणीय है। यह कषाय देश संयम को विनाश करने वाली है। जिसके उदय से जीव हल रेखा के समान क्रोध को त्यागने में असमर्थ होता है, वह अप्रत्याख्यान क्रोध है। जिसके उदय से जीव में अस्थि के समान गर्व होता है, वह अप्रत्याख्यान मान है। जिसके उदय से प्राणी के मेंड़े के सींग के समान

यस्योदयेनासुभृतां कज्जलसमानो लोभो जायते सो अप्रत्याख्यानलोभः। प्रत्याख्यानं-संयममावृण्वन्तीति प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमान मायालोभाः महाव्रतघातिनः। यस्योदयेनात्मा बालुकारेखासमानं क्रोधं करोति स प्रत्याख्यानक्रोधः। यद्विपाकेनांगी दारूसादृशमभिमानं विधत्ते स प्रत्याख्यानमानः। यद्वशात् जीवो गोमूत्रिकासमानं कौटिल्यं हंतुमसमर्थः सा प्रत्याख्यानमाया। यस्योदयेन देही कर्दमतुल्यं लोभं न त्यजति स प्रत्याख्यानलोभः। संजमेन सहैकीभूय ये ज्वलंति अथवा येषु सत्सु यथाख्यातसंयमो ज्वलंतीति ते संज्वलन-क्रोधमानमायालोभाः यथाख्यात -चारित्रघातिनः।

मन में वंचना होती है, वह अप्रत्याख्यान माया है।

जिसके उदय से प्राणियों के कज्जल के समान लोभ उत्पन्न होता है, वह अप्रत्याख्यान लोभ है।

प्रत्याख्यान संयम है। उस संयम को जो आवरण करता है, वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है। यह महाव्रत विनाशक है। जिसके उदय से आत्मा वालुका रेखा के समान क्रोध को करता है वह प्रत्याख्यान क्रोध है।

जिसके उदय से जीव के दारू के सादृश गर्व रहता है वह प्रत्याख्यान मान है।

जिस कषाय के उदय से जीव गोमूत्रिका के समान कुटिलता छोड़ने में असमर्थ है, वह प्रत्याख्यान माया है।

जिस कषाय के उदय से जीव कर्दम (कीचड़) के समान लोभ छोड़ने में असमर्थ है, वह प्रत्याख्यान लोभ है।

संयम के साथ एक होकर जो ज्वलित होते हैं अर्थात् जिसके उदय होने पर यथाख्यात संयम ज्वलित होता है, वे यथाख्यात चारित्र को घात करने वाले संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ हैं।

यदुदयेन मुनिर्जलरेखानिभं क्रोधं हंतुमक्षमः स संज्वलनक्रोधः। यस्य विपाकेन यतिर्लतासमानं मानं हंतुमसमर्थः स संज्वलनमानः। यस्या उदयेन संयमी अवलेखनीसमानं निकृतिं हृदस्त्यक्तुमक्षमः सा संज्वलमाया। यद् विपाकेन महात्मा हरिद्रातुल्यं लोभं निराकर्तुं न समर्थः स संज्वलन लोभः। ईषत् कषायाः नोकषायाः यथाख्यातसंयमघातिनः। यत् कर्म-निमित्तेन रागहेतु-हास उत्पद्यते तत् हास्यं। येन पुद्गलस्कंधोदयेन द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु रति र्जायते सा रतिः।

यस्य कर्मविपाकेन द्रव्यादिषु तपोध्यानाध्ययनादिषु चारति र्भवति सा अरतिः। येन पुद्गलविपाकेन देहिनां शोकः प्रादुर्भवति स शोकः। यैः पुद्गलस्कन्धैरुदयाद् गतौ भयं जायते जीवस्य तेषां भयमिति संज्ञा। येषां कर्मणां वशेन जुगुप्सा घृणा उत्पद्यते तेषां जुगुप्सा इति संज्ञा। येन

जिस कषाय के उदय से मुनि जल रेखा के समान क्रोध छोड़ने में असमर्थ रहता है, वह संज्वलन क्रोध है। जिस कषाय के उदय से मुनि लता के समान मान कषाय छोड़ने में असमर्थ रहता है, वह संज्वलन मान है। जिसके उदय से मुनि अवलेखनी के समान माया को हृदय से छोड़ने में असमर्थ रहता है, वह संज्वलन माया है। जिसके विपाक से मुनि हल्दी के समान लोभ कषाय का निराकरण करने में असमर्थ है, वह संज्वलन लोभ है। ईषत् कषाय नोकषाय हैं। (नोकषाय में कषाय की अपेक्षा स्थिति अनुभाग और उदय की अपेक्षा अल्पता पाई जाती है।) जो यथाख्यात संयम की घातक हैं। जिस कर्म स्कंध के उदय से जीव के हास्य निमित्तक राग उत्पन्न होता है, वह हास्य है। जिन कर्म स्कन्धों के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों में राग उत्पन्न होता है, वह रति है।

जिन कर्म स्कन्धों के उदय से द्रव्य आदि एवं तप, ध्यान, अध्ययन आदि में अरति (अरुचि) होती है, वह अरति है।

जिन कर्म स्कन्धों के उदय से जीव के शोक उत्पन्न होता है, वह शोक है।

पुद्गलस्कंधोदयेन पुरुषे आकांक्षा प्रवर्त्तते स स्त्रीवेदः। येन कर्मणा वनितायामिच्छा जायते स पुंवेदः। येन दुष्कर्मविपाकेनेष्टिकाग्निसादृश्येन स्त्रीपुरुषयोराकांक्षा उत्पद्यते स नपुंसकवेदः। एवं सर्वे कषायाः।

येन दुष्कर्मोदयेन जीवस्योर्ध्वगतिस्वभावस्य तीव्रवेदना-व्याप्तेषु दुस्सह-शीतोष्ण-व्याकुलेषु नरकेषु दीर्घतर-जीवनेनावस्थानं भवति तत् नरकायुः। यद् विपाकेन दुःखाकुलः प्राणी तिर्यग्गतिषु जीवति तत् तिर्यगायुः। येन कर्म-विपाकेन सुख-दुःखाकुलेषु मनुष्यभवेषु चिरम-वस्थानं भवति देहिनां तन्मनुष्यायुः। येन पुण्यकर्म-विपाकेन शर्माकरासु देवगतिषु घनतरं कालं अवस्थानं धर्मिणां भवति तद् देवायुः। यथा शृंखलाबद्धपुमान् बंदीगृहात् गमनं कर्तुं न शक्नोति तथा आयुः

जिन कर्म स्कन्धों के उदय से जीवों के वर्तमान गति में भय उत्पन्न होता है, वह भय है।

जिस कर्म के उदय से ग्लानि घृणा उत्पन्न होती है, वह जुगुप्सा है।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से पुरुष में आकांक्षा उत्पन्न होती है, वह स्त्रीवेद है।

जिस कर्म के उदय से स्त्री में अभिलाषा उत्पन्न होती है, वह पुरुष वेद है।

जिस कर्म के उदय से ईटों के अवा की अग्नि के समान स्त्री और पुरुष दोनों में आकांक्षा उत्पन्न होती है, वह नपुंसक वेद है।

इस प्रकार सभी कषायों का वर्णन पूर्ण हुआ।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाले जीव का तीव्र शीत और उष्ण वेदना वालें नरकों में दीर्घ जीवन के लिए अवस्थान होता है, वह नरकायु है।

जिस कर्म के उदय से प्राणी का विविध वेदनाओं के स्थान स्वरूप तिर्यंच गति में अवस्थान होता है, वह तिर्यगायु है।

जिस कर्म के उदय से प्राणियों का सुख और दुःखों से व्याप्त मनुष्य भव में दीर्घकाल तक अवस्थान होता है, वह मनुष्यायु है।

जिस पुण्य कर्म के फलस्वरूप धर्मात्मा जीव का सुखकर देवगति

शृंखलाबद्धोंऽगी काय-बंदीगृहात् गत्यंतरं गंतुं न शक्नोति।

यद्दुष्कर्मवशेनात्मा नरकगतिं याति सा नरकगतिः।

यत् कर्मोदयेन पापी तिर्यग्गतिं व्रजति सा तिर्यग्गतिः। यत् कर्मविपाकेन देही मनुष्यगतिं गच्छति सा मनुष्यगतिः। यत् पुण्यकर्मोदयेन पुण्यवान् देवगतिं लभते सा देवगतिः। यदि गतिनामकर्म न स्यादगति-जीवः स्यात्। यद् उदयादात्मा एकेन्द्रियः कथ्यते तदेकेन्द्रियजातिनाम। यद् वशात् संसारी कृम्यादिजातिं प्राप्नोति द्वीन्द्रिय उच्यते तद् द्वीन्द्रिय-जातिनाम। यदाधीनो देही कुंथ्वादिभवं गतस्त्रीन्द्रियो निगद्यते तद्

में दीर्घकाल तक अवस्थान होता है, वह देवायु कर्म है।

जैसे शृंखलाबद्ध पुरुष बंदीगृह से जाने में समर्थ नहीं होता ठीक उसी प्रकार आयु कर्म से बंधा हुआ प्राणी दूसरी गति में जाने में समर्थ नहीं होता है।

जिस दुष्कर्म के फलस्वरूप जीव नरकगति में जाता है, वह नरकगति कर्म है।

जिस कर्म के उदय से पापी जीव तिर्यंचगति में जाता है, वह तिर्यंचगति है।

जिस कर्म के उदय से प्राणी मनुष्य गति को जाता है, वह मनुष्य गति है।

जिस पुण्य कर्म के उदय से पुण्यवान जीव को देवगति की प्राप्ति होती है, वह देवगति नामकर्म है।

यदि गति नामकर्म न हो तो जीव के अन्य भव में जाना संभव न हो सकेगा।

जिसके उदय से आत्मा एकेन्द्रिय कहा जाता है, वह एकेन्द्रिय जाति नामकर्म है।

जिस कर्म के वश से जीव कृमि आदि जाति को प्राप्त द्वीन्द्रिय

त्रीन्द्रियजातिनाम। यत्कर्म-विपाकेन दंशादि-योनिं परिणतः संसारी चतुरिंद्रियो निरूप्यते तच्चतुरिंद्रियजातिनाम।

यत्कर्मोदयेन पंचेन्द्रियावस्थानं प्राप्तो जीवः पंचेन्द्रियः कथ्यते तत्पंचेन्द्रियजातिनाम। यदि जातिनाम कर्म न स्यात् तर्हि व्रीहयो व्रीहिभिः-वृश्चिका वृश्चिकैर्मत्कुणा मत्कुणैश्च समाना न जायेरन्। दृश्यन्ते ता जातयः प्रत्यक्षेण तत आप्तवचनं प्रमाणं स्यात्। यद् उदयात् सप्तधातुमय-स्यौदारिक-शरीरस्य तिर्यग्मनुष्याणां निर्वृत्ति र्भवति तदौदारिक-शरीरनाम। यत् कर्मविपाकेन देवनारकाणामनेक-विक्रियाकरण-समर्थं वैक्रियिकशरीरं जायते तद्वैक्रियिकशरीरनाम।

येन पुद्गल-स्कंधोदयेन शुभं सूक्ष्मं संशय-निर्नाशकं आहारक

होता है, वह द्वीन्द्रिय जाति नामकर्म है।

जिस कर्म के आधीन प्राणी कुंथु आदि भव को प्राप्त हुआ त्रीन्द्रिय कहलाता है, वह त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से दंशादि योनि को प्राप्त होता हुआ चतुरिन्द्रिय कहलाता है, वह चतुरिन्द्रिय नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से पञ्चेन्द्रिय अवस्था को प्राप्त जीव पञ्चेन्द्रिय कहलाता है, वह पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म है।

यदि जाति नामकर्म न हो तो धान्य धान्य के समान, बिच्छू बिच्छुओं के समान, खटमल खटमलों के समान न होगें, किन्तु इन सबमें परस्पर सदृशता दिखाई देती है। इससे जाति नामकर्म का अस्तित्त्व सिद्ध होता है और आप्त के वचनों की निर्दोष सिद्धि होती है।

जिस कर्म के उदय से सप्तधातुमय औदारिक तिर्यंच और मनुष्यों के शरीर की रचना होती है, वह औदारिकशरीर नामकर्म है।

जिस कर्म के फलस्वरूप देव नारकियों के अनेक प्रकार की विक्रिया करने में समर्थ वैक्रियिक शरीर की उत्पत्ति होती है, वह

शरीरं मुनीनामुत्पद्यते तदाहारक शरीरनाम। येन कर्मणा शुभाशुभात्मकं शुभाशुभकरं तैजसशरीरं यतीनां भवति तत्तैजस शरीरनामा। यद् उद्यात् कर्ममयं कार्मणशरीरं देहिनां जायते तत् कार्मण शरीरनाम।

यदि शरीरनामकर्म न स्यादात्मा मुक्तः स्यात्। येन कर्मविपाकेन शिरःपृष्टोरोबाहूदलगलकपाणि-पादाष्टांगानि ललाटनासिकाद्युपांगानि तदंतरभेदानि च भवंति तदौदारिक-वैक्रियिकाहारकांगोपांगनाम त्रिविधं। यद् उद्याद् चक्षुरादीनां स्व-स्व स्थानेषु प्रमाणान्विताश्च चक्षुरादयो जायंते तन्निर्माणनाम। निर्माणनाम द्विविधं। प्रमाणनिर्माणं स्थाननिर्माणं चेति।

यद्येतत्कर्म न स्यात्कर्णनासिकादीनां स्वजातिस्वरूपेणात्मनः

वैक्रियिकशरीर नामकर्म है।

जिन पुद्गल स्कंधों के उदय से शुभ, सूक्ष्म एवं संशय नाशक मुनियों के आहारक शरीर की उत्पत्ति होती है, उसे आहारकशरीर कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से साधुओं के शुभ अशुभ रूप शुभ अशुभ तैजसशरीर की रचना होती है, वह तैजसशरीर नामकर्म है।

जिसके उदय से प्राणियों के कर्म रूप कार्मणशरीर की उत्पत्ति होती है, वह कार्मणशरीर नामकर्म है।

यदि शरीर नामकर्म न हो तो जीव के अशरीरता का प्रसंग हो जायेगा।

जिस कर्म के उदय से मस्तक, पीठ, हृदय, नितम्ब (कमर के पीछे का भाग), दो पैर, दो हाथ, ये आठ अंग तथा ललाट, नाक आदि उपांग होते हैं वही आंगोपांग औदारिक, वैक्रियिक और आहारक के भेद से तीन प्रकार का है।

जिस नामकर्म के अनुसार चक्षु आदि स्व-स्व स्थानों में यथा योग्य प्रमाण निष्पन्न होते हैं, वह निर्माण नामकर्म है।

स्थानेन प्रमाणेन च नियमो नास्ति।

यत् शरीरनाम-कर्मोदयात् गृहीतपुद्गलानां शरीररूपेणान्योन्य संश्लेषणं यतो भवति तद् बंधननाम। औदारिकादिभेदेन पंचविधं यदि बंधन-नामकर्म न स्याद् वालुकापुरुषशरीरमिव शरीरं स्यात्। यदुया-दौदारिकादिशरीराणां विविररहितान्योन्यप्रवेशानुप्रवेशेनैकत्वापादनं भवति तत् संघातनाम पंचविधं औदारिकादिभेदेन। यदि संघातनामकर्म न स्यात् तर्हि तिलमोदक इव जीवशरीरं स्यात्। येनोदयागतेन कर्मस्कंधेन गीर्वाणजिनेशशरीराणां (इव) शुभं समचतुरस्रसंस्थानं क्रियते तत् समचतुरस्रसंस्थाननामकर्म। यत् कर्मवशात् न्यग्रोधपरि-मंडलाकारं

निर्माण नामकर्म दो प्रकार का है, प्रमाणनिर्माण एवं स्थाननिर्माण।

यदि प्रमाण एवं स्थान निर्माण नामकर्म न हो तो कान, नासिका स्वस्थान तथा यथा योग्य प्रमाण में होने का अभाव हो जायेगा, जिससे अंग प्रत्यंग संकर और व्यतिकर स्वरूप हो जावेंगे।

जिस कर्म के उदय से जीव के साथ पुद्गलों का अन्योन्य प्रदेश संश्लेष सम्बन्ध होता है, वह बंधन नामकर्म है। यह औदारिक आदि शरीर के भेदों से पाँच प्रकार का है। यदि शरीर बंधन नामकर्म जीव के न हो तो बालुका द्वारा बनाये गए पुरुष (शरीर) के समान जीव का शरीर होगा।

जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों में छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशों के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता आती है वह संघातनामकर्म है।

यह संघात नामकर्म औदारिक आदि पञ्च शरीरों के भेद से पाँच प्रकार का है।

यदि शरीरसंघात नामकर्म जीव के न हो तो तिल के मोदक के समान अपुष्ट शरीर वाला जीव हो जावे।

नाभेरुर्ध्वंपरमाणुबहूपेतं अधो ह्रस्वं आयातवृत्तं शरीरस्य संस्थानं भवति तत् न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानं। येन कर्मोदयेन वल्मीकाकारं शाल्मलिनिभं वा नाभेरधोऽवयव-विशालं ऊर्ध्वंसूक्ष्मं शरीरस्य संस्थानं भवति तत् स्वातिसंस्थानं। येन कर्मविपाकेन पृष्टप्रदेशे बहुपुद्गल-प्रचययुक्तं संस्थानं भवति तत् कुब्जकसंस्थानम्। यद् वशात् सर्वांगोपांग ह्रस्वोपेतं शरीरस्य संस्थानं जायते तद् वामनसंस्थानम्। येन कर्मोदयेन नारकशरीराणां सर्वांगोपांगं हुंडसंस्थितिकरं वीभत्सं संस्थानमुत्पद्यते तत् हुंडकसंस्थाननाम।

यदि शरीरसंस्थानं न स्यात् जीवशरीरमसंस्थानं स्यात्।

येन शुभपुद्गलोदयेन वज्रास्थिमयं वज्रवलयवेष्टितं वज्रनाराच-

जिस कर्म के उदय से तीर्थङ्कर भगवान् के समान शुभ शरीर का संस्थान होता है, वह समचतुरस्र संस्थान नाम कर्म है।

न्यग्रोध (बट) वृक्ष के समान नाभि के ऊपर शरीर में स्थूलत्व और नीचे के भाग में लघु प्रदेशों की रचना होना न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान है।

वल्मीक या शाल्मली वृक्ष के आकार के समान नाभि से नीचे विशाल और ऊपर सूक्ष्म या हीन जिस शरीर का आकार होता है, वह स्वातिशरीरसंस्थान है।

जिस कर्म के उदय से पीठ पर बहुत पुद्गलों का पिण्ड हो जाता है, वह कुब्जकसंस्थान नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर के सभी अंग उपांग छोटे होते हैं, उसे वामनसंस्थान कहते है।

जिस कर्म के उदय से सभी अंग और उपांग अनिश्चित आकार हुण्ड के समान एवं विषम (असुहावने) आकार वाले होते हैं, वह हुण्डक संस्थान है।

यदि शरीरसंस्थान नामकर्म स्वीकार नहीं किया जाय तो शरीर संस्थान नामकर्म के अभाव में जीव का शरीर आकृति रहित हो जायेगा।

कीलितं अत्यन्त-दृढं शरीरस्य संहननं भवति तत् वज्रर्षभनाराचसंहननम्। येन कर्म विपाकेन वज्रास्थिमयं वज्रनाराचकीलितं शरीरस्य संस्थानं जायते तत् वज्रनाराच-संहननं। यत् कर्मवशादस्थि-संधि-बंध-नाराचकीलितं संहननं भवति तत् नाराचसंहननं। यस्य कर्मोदयेन नाराचेनार्द्धकीलितास्थि - संचयमयं संहननं जायते तदर्द्धनाराचसंहननं। येन कर्मणा उभयास्थिप्रांते कीलितं संहननं भवति तत् कीलिका-संहननं। यत् दुष्कर्मवशादंतरप्राप्त परस्परास्थिसंधि बंहिः शिरास्नायुमांसघटितं संहननं भवति तदसंप्राप्ता सृपाटिकासंहननं।

यद्येतत् संहनन नामकर्म न स्यात् शरीरमसंहननं भवेत्।

येन कर्मणा गंडकादिकायपुद्गलानां कर्कशभावो भवति तत्

जिस शुभ कर्म के उदय से वज्रमय हड्डियाँ वज्रमय वेष्टन से वेष्टित और वज्रमय नाराच से कीलित होती हैं, वह वज्रवृषभनाराच-शरीरसंहनन है।

जिस कर्म के उदय से वज्रमय हड्डियाँ और वज्रमय नाराच से कीलित होती हैं, वह वज्रनाराचशरीरसंहनन है।

जिस कर्म के उदय से हड्डियों की संधियाँ नाराच से कीलित होती हैं, वह नाराचशरीरसंहनन नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से अस्थिबंध अर्ध कीलित होता है, उसे अर्धनाराचसंहनन कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से वज्ररहित हड्डियाँ और कीलें होती हैं, वह कीलक शरीर संहनन नामकर्म है।

जिस पाप कर्म के उदय से भीतर हड्डियों का परस्पर बन्ध न हो मात्र बाहर से वे सिरा स्नायु माँस आदि लपेट कर संघटित की गयी हों, वह असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन है।

संहनन नामकर्म के अभाव में शरीर संहनन रहित हो जायेगा।

जिस कर्म के उदय से शरीर में गंडकादि रूप कठोरता होती है, वह कर्कश नामकर्म है।

कर्कश नाम। यद्वशान्मयूरपिच्छादिषु (इव) मृदुत्वं जायते तत् मृदुनाम। येन कर्मोदयेन लोहादौ (इव) गुरुत्वं भवति तद् गुरुनाम। यस्य कर्मोदयेनार्कतूलादीनां (इव) लघुत्व जायते तल्लघुनाम। यद् कर्मवशात् तिलादौ (इव) स्निग्धता भवति तत् स्निग्धनाम। येन कर्मणा बालुकादौ (इव) रुक्षता उत्पद्यते तद् रूक्षनाम। येन कर्मणा जलादौ (इव) शीतत्वं भवति तत्शीतनाम।

यत्कर्मवशात् अग्निकायादौ (इव) उष्णत्वं स्यात् तत् उष्णनाम। नैतेषामभावः सर्वत्र कर्कशमृद्वादि-दर्शनात्।

यस्य कर्मणा उदयेन शृंगवेरादिषु (इव) शरीरपुद्लास्तिक्त-

जिस कर्म के उदय से मयूर पीछी आदि के समान शरीर में मृदुता होती है, वह मृदु नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों में लोहा आदि के समान गुरुता होती है, वह गुरु नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों में रूई के समान लघुता होती है, वह लघु नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर में तिलों की स्निग्धता के समान स्निग्धता होती है, वह स्निग्ध नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणियों के शरीर में बालू के समान रूक्षता उत्पन्न होती है, वह रूक्ष नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से जलादि के समान शरीर में शीतलता होती है, वह शीतनामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से अग्निकाय आदि के समान उष्णता होती है, वह उष्ण नामकर्म है।

कर्कशादि का अभाव नहीं है, क्योंकि सर्वत्र कर्कशमृदुत्व आदि के दर्शन होते हैं।

जिस कर्म के उदय से शृंगवेर आदि के समान शरीर के पुद्गल स्कंध तिक्त रूप परिणत होते हैं, वह तिक्त नामकर्म है।

स्वरूपेण परिणमंति तत् तिक्तनाम। यद् वशान्निंबादौ (इव) शरीर-पुद्गलाः कटुकभावेन परिणमंति तत् कटुकनाम। यद् विपाकेन विभीतक-फलादौ (निभं) कषायभावेन पुद्गला एकीभावं व्रजन्ति तत् कषायनाम। यस्य कर्मोदयेन शरीरपुद्गला आम्लस्वरूपेण चिंचा वृक्षादौ (निभं) तन्मयत्वं यांति तदाम्लनाम। येन कर्मणा काययोग्यपुद्गलाः इक्ष्वादिषु (इव) मधुररूपेण परिणमंति तन्मधुरनाम। न तेषामभावो निंबादीनां प्रतिनियत-रसोपलंभात्।

यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन शरीरपुद्गलाः सुगंधा भवंति तत् सुगंधनाम। येन कर्मविपाकेन शरीरपुद्गला दुर्गंधा भवंति तत् दुर्गंधनाम। नेतयोरभावः। हस्त्यादिजातिषु प्रतिनियतगंधोपलंभात्। यस्य कर्मणा

जिस कर्म के उदय से निंब आदि के समान शरीर के पुद्गल स्कंध कटुक परिणत होते हैं, वह कटुक नामकर्म है।

जिस कर्म के फलस्वरूप आँवले के फल के समान शरीर के स्कंध कषायले रूप होते हैं, वह कषाय नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर के स्कंध चिंचा वृक्ष के समान आम्ल रूप से परिणत होते हैं, वह आम्ल नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर के स्कंध गन्ने आदि के समान मधुरता को प्राप्त होते हैं, वह मधुर नामकर्म हैं।

रसकर्म का अभाव नहीं है, क्योंकि निंबादि में प्रतिनियत रस देखा जाता है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गल सुगन्धित होते हैं, वह सुगंध नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गल दुर्गंधित होते हैं, वह दुर्गंध नामकर्म है।

गंध नामकर्म का अभाव नहीं है, क्योंकि हाथी आदि में नियत गंध पाई जाती है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों का कृष्ण वर्ण होता

उदयेन शरीर पुद्गलानां कृष्णता भवति तत् कृष्णनाम। यत् कर्मवशात् काय पुद्गलानां नीलत्वं भवति तन् नीलनाम। येन कर्मविपाकेन शरीरपुद्गलानां रक्तता जायते तद् रक्तवर्णनाम। येन कर्मोदयेन देहाणु स्कंधानां पीतत्वमुत्पद्यते तत् पीतवर्णनाम। येन कर्मविपाकेन शरीर-पुद्गलानां शुक्लता भवति तत् शुक्लनाम। एतेषामभावेप्यवर्णं शरीरं स्यात्।

पूर्वोत्तरशरीरयोरंतराले एकद्वि-त्रिसमयेषु वर्तमानस्य नरकगतिं गतस्य जीवस्य यस्य कर्मस्कंधस्योदयेन नरकगति-प्रायोग्यसंस्थानं भवति तत् नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं।

येन कर्मविपाकेन तिर्यग्गतिं गतस्य जीवस्य विग्रहगतौ वर्त्तमानस्य

है, वह कृष्ण नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों का नील वर्ण होता है, वह नील नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों का रक्त वर्ण होता है, वह रक्त नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों का पीत वर्ण होता है, वह पीत नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों का शुक्ल वर्ण होता है, वह शुक्ल नामकर्म है।

इन कर्मों के अभाव में अनियत वर्णादि वाला शरीर हो जायेगा, किन्तु ऐसा देखा नहीं जाता।

पूर्व और उत्तर शरीरों के अतंराल वर्ती एक, दो और तीन समय में जिस कर्म के उदय से नरक गति को जाने वाले जीव के नरक गति के योग्य संस्थान होता है, वह नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से तिर्यंचगति को गए हुये और विग्रहगति में वर्तमान जीव के तिर्यंचगति के योग्य संस्थान होता है, वह तिर्यंचगति

तिर्यग्गति प्रायोग्यं संस्थानं जायते तत् तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं। येन कर्म विपाकेन मनुष्यगतिं गतस्य देहिनो मनुष्यगतिं प्रायोग्यं संस्थानं स्यात् तत् मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्यं। यस्य कर्मण उदयेन देवगतिं गतस्य प्राणिनो देवगति-प्रायोग्यं संस्थानमुत्पद्यते तत् देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्यं नाम। नास्याभावः विग्रहगतौ जातिप्रतिनियत - संस्थानोपलंभात्। यस्य कर्मस्कंधस्य विपाकेन जीवोऽयः पिंडवन्नधः पतित नार्कतूलवत् लघुत्वात् ऊर्ध्वं व्रजति तदगुरु-लघुनाम। यद् वशादंगी बंधनोच्छ्वासनिरोधाग्नि-प्रवेशपतनोद्यैः स्वयमात्मानं हंति तदुपघातनाम अथवा यत् कर्म जीवस्य स्वपीड़ाहेतूनवयवान् महाशृंगलंबस्तनोदरादीन् करोति तदुपघातनाम। यद्

प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से मनुष्यगति को गए हुये और विग्रहगति में वर्तमान जीव के मनुष्यगति के योग्य संस्थान होता है, वह मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से देवगति को गए हुये और विग्रहगति में वर्तमान जीव के देवगति के योग्य संस्थान होता है, वह देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है।

यदि आनुपूर्वी नामकर्म न हो तो विग्रहगति के काल में जीव अनियत संस्थान वाला हो जायेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि जाति प्रतिनियत संस्थान विग्रह गति में पाया जाता है।

जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर लोहे के पिण्ड के समान गुरु होने से न तो नीचे गिरता है और न अर्कतूल के समान लघु होने से ऊपर जाता है, वह अगुरुलघु नामकर्म है।

जिन कर्म स्कंधों के उदय से जीव अपने द्वारा किए गए बन्ध श्वास, निरोध, अग्नि प्रवेश आदि के निमित्त से स्वयं का घात करता है, वह उपघात नामकर्म है अथवा जिस कर्म उदय से शरीर में स्वपीड़ा के कारणभूत अवयव उत्पन्न होते हैं, वह उपघात नामकर्म हैं जैसे महाशृंग

विपाकेन परघातहेतवः शरीरपुद्गलाः सर्पदंष्ट्र वृश्चिकपुच्छादिभवः पर-शस्त्राद्याघाता वा भवन्ति तत् परघातनाम।

यद् वशात्प्राणिशरीरेआतापो भवति तदातपनाम। नास्याभावः सूर्यमंडलपृथ्वी-कायादिषु दर्शनात्। येन कर्मविपाकेनांगिदेहे उद्योतो जायते तदुद्योतनाम। नास्याभावः चंद्रनक्षत्रखद्योतपृथ्वी-कायादिष्वुप-लंभात्। येन कर्मोदयेन जीव उच्छ्वासनिःश्वासोत्पादनसमर्थः स्यात् तत् उच्छ्वासनाम।

यदुदयेन सिंहकुंजरवृषभादीनामिव खेविद्याधरदेवादीनां प्रशस्ता

(बारह सिंगा) के समान बड़े सींग, विशाल तोंद आदि।

जिस कर्म के उदय से शरीर में पर को घात करने वाले पुद्गल निष्पन्न होते हैं, वह परघात नामकर्म है, जैसे साँप की दाढ़ों में विष, बिच्छू की पूंछ में पर दुःख के कारणभूत पुद्गलों का सञ्चय आदि। अथवा जिसके उदय से पर शस्त्रादि का निमित्त पाकर घात होता है, वह पर घात नामकर्म है।

आतप नामकर्म का अभाव नहीं है, क्योंकि सूर्य मण्डल में पृथिवीकायिक जीवों के आतप नामकर्म का उदय देखा जाता है।

जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में आतप होता है, वह आतप नामकर्म है।

यदि आतप नामकर्म न हो तो पृथिवीकायिक जीवों के शरीर रूप सूर्य मण्डल में आतप का अभाव हो जाय, किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता।

जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में उद्योत उत्पन्न होता है, वह उद्योत नामकर्म है।

उद्योत नामकर्म है, क्योंकि चन्द्र, नक्षत्र, तारा और खद्योत (जुगनू) आदि के शरीरों में उद्योत पाया जाता है।

जिस कर्म के उदय से जीव उच्छ्वास और निःश्वास रूप कार्य के उत्पादन में समर्थ होता है उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्म के उदय से सिंह, कुंजर और वृषभ आदि के समान विद्याधर और देव आदि की प्रशस्तगति होती है, वह प्रशस्त विहायोगति है।

गति र्भवति तत् प्रशस्तविहायोगतिनाम। यद् दुष्कर्मवशात् खे उष्ट्र शृंगालादीनामिव मक्षिकापक्ष्यादीनामप्रशस्तगति र्भवति तदप्रशस्त विहायोगतिनाम। नास्याभावः स्वल्पशरीरिणां पक्षिणामप्याकाशगमन-दर्शनात्। शरीरनामकर्मोदयेन निष्पाद्यमानं शरीरमेकात्मोपभोग-कारणं यतो भवति तत् प्रत्येक-शरीरनाम। येन कर्मोदयेन बह्वात्मोपभोग-निमित्तं शरीरं स्यात् तत् साधारणशरीरनाम। यद् वशात् देहिनां त्रसत्वं भवति तत् त्रसनाम। अन्यथा द्वीन्द्रियाणामभावः स्यात्। येन दुष्कर्मोदयेनांगी स्थावरेषूत्पद्यते तत् स्थावरनाम। अन्यथा स्थावराणामभावः स्यात्।

यदुदयात् स्त्रीपुरुषयोरन्योन्यप्रभवं सौभाग्यं जायते तत् सुभगनाम।

जिस कर्म के उदय से ऊंट, सियाल आदि के समान मक्खी, पक्षी आदि का अप्रशस्त-अमनोज्ञ गमन होता है, वह अप्रशस्त विहायोगति है।

विहायोगति नामकर्म है, क्योंकि तिर्यंच, मनुष्य तथा पक्षियों का आकाश में गमन पाया जाता है।

शरीर नामकर्म के उदय से रचा जाने वाला जो शरीर जिसके निमित्त से एक आत्मा के उपभोग का कारण होता है, वह प्रत्येक शरीर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से बहुत आत्माओं के उपभोग का हेतु रूप साधारणशरीर होता है, वह साधारण शरीर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से जीवों के त्रसपना होता है, वह त्रस नामकर्म है।

त्रस नामकर्म है, क्योंकि अन्यथा द्वीन्द्रिय आदि जीवों का अभाव हो जायेगा।

जिस दुष्कर्म के उदय से स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों में उत्पत्ति होती है, वह स्थावर नामकर्म है।

स्थावर नामकर्म है, अन्यथा स्थावर जीवों का अभाव हो जायेगा।

जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुषों में सौभाग्य अर्थात् रूपादि गुणों के होने पर प्रीति कर अवस्था उत्पन्न होती है, वह सुभग नामकर्म है।

यद् वशात् स्त्रीपुंसयोः सुरूपादिगुणे सत्यपि अप्रीतिकरं दौर्भाग्यं भवति तद् दुर्भगनाम। यत् शुभकर्मवशात् देहिनामन्योन्यो मधुरः सुस्वरः जायते तत् सुस्वरनाम। येन दुष्कर्मणा प्राणिनां कटुकः परपीडाकरो दुःस्वर उत्पद्यते तद् दुःस्वरनाम। यच्छुभोदयादंगोपांगानां रमणीयत्वं भवति तच्छुभनाम। यद्वशादंगोपांगानां विरूपकत्वं भवति तद् अशुभनाम। यद् वशादन्यबाधाकरेषु शरीरेषु जीव उत्पद्यते तद् बादरनाम। येन दुष्कर्मोदयेनांगी सूक्ष्मकायेषु जायते तत् सूक्ष्मनाम।

यद् वशादाहारादिषट्पर्याप्तिनिष्पत्तिर्जीवस्य जायते तत् पर्याप्तिनाम। यद् वशात् पर्यापयितुमात्मा असमर्थो भवति तदपर्याप्तिनाम।

जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुषों में रूपादि गुणों के होने पर भी अप्रीतिकर अवस्था होती है, वह दुर्भग नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणियों के दूसरों को मधुर लगने वाला स्वर उत्पन्न होता है, वह सुस्वर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणियों के कटुक दूसरों को दुःख करने वाला स्वर उत्पन्न होता है, वह दुःस्वर नामकर्म है।

जिस शुभ कर्म के उदय से अंगों और उपांगों के शुभपना (रमणीयत्व) होता है, वह शुभ नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से अंग और उपांगों में अशुभपना उत्पन्न होता हे, वह अशुभ नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से जीव दूसरों को बाधा दिये जाने योग्य स्थूल शरीर में उत्पन्न होता है, वह बादर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से प्राणी सूक्ष्म शरीर में उत्पन्न होता है, वह सूक्ष्म नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से आहार आदि षट् पर्याप्तियों की रचना होती है, वह पर्याप्ति नामकर्म है।

यस्य शुभकर्मणो विपाकेन दुष्करोपवासादि-तपःकरणेऽपि अंगोपांगानां स्थिरत्वं भवति तत् स्थिरनाम। यद् वशात् उपवासादिकरणे स्वल्प-शीतोष्णादिना अंगोपांगानि कृशी भवन्ति तदस्थिरनाम। येन शुभकर्मोदये -नादेयत्वं प्रभोपेतं शरीरं भवति तदादेयनाम। यद् वशादनादेयं निःप्रभवशरीरं भवति तत् अनादेयनाम। यत् कर्मविपाकात् सद्भूतानां वासद्भूतानां गुणानां लोके ख्यापनं जायते तद्यशःकीर्तिनाम।

यदुदयाद् भूतानामभूतानां च दोषाणां ख्यापनं लोके भवति तद-यशःकीर्तिनाम। येनात्यंतशुभोदयेन लोकत्रयचमत्कारक्षोभकारकं पंचकल्याणपूजायोग्यमार्हत्वं सद्दृष्टे र्भवति तत् सर्वोत्कृष्टं तीर्थंकरत्व-

---

जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्तियों के पूर्ण करने के लिए समर्थ नहीं होता है, वह अपर्याप्त नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से दुष्कर उपवास आदि तप करने से भी अंग उपांग आदि स्थिर बने रहते हैं कृश नहीं होते, वह स्थिर नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से उपवास आदि करने पर अथवा अल्पशीत या उष्ण के सम्बन्ध से अंगोपांग कृश हो जाते हैं, वह अस्थिर नामकर्म है।

जिस शुभ कर्म के उदय से जीव के बहुमान्य प्रभा युक्त शरीर होता है, वह आदेय नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से बहुमान्यता से रहित निष्प्रभ शरीर उत्पन्न होता है, वह अनादेय नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान गुणों का उद्भावन लोगों के द्वारा किया जाता है, वह यशःकीर्ति नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान अवगुणों का उद्भावन लोगों के द्वारा किया जाता है, वह अयशःकीर्ति नामकर्म है

जिस शुभ नामकर्म के उदय से तीन लोक में चमत्कार क्षोभ उत्पन्न करने वाले पञ्च कल्याणक पूजा योग्य आर्हन्त्य पद की प्राप्ति होती है, वह सर्वोत्कृष्ट तीर्थङ्कर नामकर्म है।

नाम। यथा चित्रकारो हस्त्यश्वदेवनारकचित्राणि नानारूपाणि करोति तथा नामकर्म देवमनुष्यनारककीटतरुवृश्चिकादि-नानारूपान्विधत्ते।

यत् शुभकर्मोदयात् लोकपूजितेषूत्तमकुलेषु जन्म प्राप्यते तद् उच्चैर्गोत्रम्। यद् वशात् लोकगर्हितेषु कुलेषु जन्म स्यात् तन् नीचैर्गोत्रं। यथा कुंभकारो लघुवृहद्भाजनानि कुरुते तथा गोत्रकर्म उत्तमनिंद्यकुलानि जनयति।

यद् वशात् दातंकामोऽपि न प्रयच्छति स दानांतरायः।

यदुदयात् लब्धकामोऽपि न लभते स लाभांतरायः। यद् विपाकाद् भोक्तुमिच्छन्नपि न भुंक्ते स भोगांतरायः। यद् वशात् उपभोक्तुमभिवांछन्नपि नोपभुंक्ते स उपभोगांतरायः। येन कर्मोदयेनोत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते

जैसे चित्रकार हाथी, घोड़ा, देव और नारकी के नाना रूप वाले चित्रों को बनाता है उसी प्रकार नामकर्म देव, मनुष्य, नारकी, कीट, वृक्ष, बिच्छू आदि नाना रूपों की रचना करता है।

जिसके उदय से लोक पूजित उत्तम कुलों में जन्म होता है वह उच्च गोत्र है।

जिसके उदय से लोक गर्हित निंद्य कुलों में जन्म होता है वह नीच गोत्र है।

जैसे कुम्भकार छोटे बड़े बर्तन बनाता है, उसी प्रकार गोत्रकर्म उत्तम, निंद्य कुलों में उत्पन्न कराता है।

जिस कर्म के उदय से देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं देता, वह दानांतराय कर्म है।

जिसके उदय से प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ भी प्राप्त नहीं कर पाता है, वह लाभांतराय कर्म है।

जिस कर्म के उदय से भोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता, वह भोगांतराय कर्म है।

जिस कर्म के उदय से उपभोग की इच्छा करता हुआ भी उपभोग नहीं कर सकता, वह उपभोगांतराय कर्म है।

स वीर्यांतरायः। यथा राज्ञो भांडागारिको दानादीनां विघ्नं करोति तथांतरायः कर्म जीवस्य दानलाभ-भोगोपभोगवीर्याणां विघ्नं विदधाति। इमाः सर्वा अष्टचत्वारिंशदधिकशतप्रमाणाः कर्मणामुत्तरप्रकृतयः पृथक्-पृथक् स्वभावा विज्ञेयाः।

इदानीं पुण्यप्रकृतीनां भेदं निरूपयामि। सातावेदनीयं देवायुः मनुष्यायुः तिर्यगायुः मनुष्यगतिः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः पंचशरीराणि त्रीण्यंगोपांगानि निर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रर्षभनाराचसंहननं प्रशस्तस्पर्शः प्रशस्तरसः प्रशस्तगंधः प्रशस्तवर्णः मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः परघातः आतपः उद्योतः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः आदेयः यशःकीर्तिः तीर्थकरत्वं उच्चैः गोत्रं एताः पुण्यप्रकृतयो जीवानां सुखजन्यो द्विचत्वारिंशत्-प्रमाणाः भवन्ति।

जिस कर्म के उदय से उत्साहित होने की इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नहीं होता, वह वीर्यांतराय कर्म है।

जैसे राजा का भण्डारी दानादि में विघ्न करता है, उसी प्रकार अंतराय कर्म जीव को दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य आदि में विघ्न डालता है। ये सब पृथक्-पृथक् स्वभाव वाली कर्म की 148 उत्तर प्रकृतियां जानना चाहिए।

अब पुण्य प्रकृतियों के भेदों का निरूपण करते हैं। साता वेदनीय, देवायु, मनुष्यायु, तिर्यंचायु, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, तीन अंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, प्रशस्त स्पर्श, प्रशस्तरस, प्रशस्तगंध, प्रशस्त वर्ण, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, आतप, उद्योत, उच्छवास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, आदेय, यशः कीर्ति, तीर्थङ्कर एवं उच्चगोत्र ये जीवों की सुख उत्पन्न करने वाली 42 पुण्य प्रकृतियाँ हैं।

पंचज्ञानावरणानि नवदर्शनावरणानि षोडशकषायाः नव-नोकषायाः मिथ्यात्वं पंचांतरायाः नरकगतिः तिर्यग्गतिः चतस्रोजातयः पंचसंस्थानानि पंचसंहननानि अप्रशस्तस्पर्शः अप्रशस्तरसः अप्रशस्तगंधः अप्रशस्तवर्णः नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं उपघातः अप्रशस्तविहायोगतिः साधारणशरीरः स्थावरः दुर्भगः दुःस्वरः अशुभः सूक्ष्मः अपर्याप्तिः अस्थिरः अनादेयः अयशःकीर्तिः असातावेदनीयं नीचैर्गोत्रं नरकायुः एता द्वयशीति पापप्रकृतयः प्राणिनां दुःखमातरो ज्ञातव्याः।

यथा सर्वेषां वस्तूनां मध्ये अमृतसमानं मधुरं सुखकारकं अन्यं न

विशेषार्थ : भेद विवक्षा से 68 पुण्यप्रकृतियाँ होती हैं और अभेद विवक्षा से 42 प्रकृतियाँ है। इसका अभिप्राय यह है कि पाँच बन्धन और पाँच संघात पाँच शरीरों के अविनाभावी हैं। अतः उनको पृथक् नहीं गिनने से 10 प्रकृतियाँ ये एवं वर्णादि की 20 में से सामान्य से वर्ण चतुष्क कहने पर 16 प्रकृतियाँ वे कम हो गई। इस प्रकार इन 26 प्रकृतियों को कम कर देने पर अभेद विवक्षा से 42 ही प्रकृतियाँ रहती हैं एवं भेद विवक्षा से इन 26 का भी कथन होने से 68 प्रकृतियाँ हो जाती हैं।

पाँच ज्ञानावरण, नवदर्शनावरण, सोलह कषाय, नव नोकषाय, मिथ्यात्व, पाँच अंतराय, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय आदि चार जातियाँ, न्यग्रोधपरिमण्डलादि पाँच संस्थान, वज्रनाराचादि पाँच संहनन, अप्रशस्त स्पर्श, अप्रशस्त रस, अप्रशस्त गंध, अप्रशस्त वर्ण, नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, साधारणशरीर, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, सूक्ष्म, अपर्याप्त, अस्थिर, अनादेय, अयशःकीर्ति, असातावेदनीय, नीचगोत्र एवं नरकायु ये जीवों को दुख उत्पन्न करने वाली 82 पाप प्रकृतियाँ जानना चाहिए।

विशेषार्थ- अप्रशस्त प्रकृतियों में घातियाँ कर्म की प्रकृतियाँ तो अप्रशस्त रूप ही हैं। उनकी 47 प्रकृतियाँ- ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9,

किंचित् भवति। हलाहलनिभं प्राणहरमपरं किंचिन्नास्ति तथा सर्वेषां प्रकृतीनां मध्ये त्रिभुवनैश्वर्यजननी सर्वदुःखांतकारिणी कृत्स्नप्राणिहितंकरा तीर्थकरत्वप्रकृतिसमानापरश्रेष्ठाप्रकृतिः कालत्रयेऽपि न स्यात्। सर्व-दुःखाकरीभूता अनंत-संसारकारिणी निकोतसप्तमनरकपर्यंतदुःखदायिनी मिथ्यात्वप्रकृतिसमा अन्या अशुभा प्रकृति नास्ति।

मोहनीय 28 और अंतराय की 5 हैं तथा नीचगोत्र, असाता वेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, समचतुरस्र संस्थान बिना न्यग्रोधपरिमण्डलादि पाँच संस्थान, वज्रवृषभनाराच बिना वज्रनाराचादि पाँच संहनन, अशुभवर्ण-गंध-रस-स्पर्श, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावर, साधारणशरीर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, सूक्ष्म, अपर्याप्त, अस्थिर, अनादेय, अयशःकीर्ति इस प्रकार वर्णादि की 16 कम करने से उदयापेक्षा 84 प्रकृतियाँ तथा घातिया कर्म की 47 में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति कम कर देने से बंधापेक्षा 82 प्रकृतियाँ अप्रशस्त रूप होती हैं। भेद विवक्षा से वर्णादि की 16 मिलाने पर बंधापेक्षा 98 एवं इन 98 प्रकृतियों में सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दो प्रकृतियाँ मिलाने से उदयापेक्षा 100 प्रकृतियाँ पापरूप (अप्रशस्त) होती हैं।

जैसे सभी वस्तुओं में अमृत के समान मधुर सुखकारक अन्य कुछ नहीं होता तथा हलाहल विष के समान प्राणों के हरण करने वाला कुछ भी नहीं है, उसी प्रकार तीनों कालों में अर्थात् भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में सभी कर्मप्रकृतियों में तीनों लोकों के ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाली, सभी दुःखों का अंत करने वाली, सभी प्राणियों का हित करने वाली तीर्थङ्कर प्रकृति के समान दूसरी कोई श्रेष्ठ प्रकृति नहीं है तथा दुःख को देने वाली, अनंत संसार को करने वाली निगोद और सप्तम नरक पर्यंत दुःख को देने वाली मिथ्यात्व प्रकृति के समान कोई अशुभ प्रकृति नहीं है।

प्रकृतिबंधः

अथ बंधकाबंधकप्रकृतीनां विवरणं करोमि। पंचज्ञानावरणानि नवदर्शनावरणानि द्विधावेदनीयं षोडशकषायाः नवनोकषायाः मिथ्यात्वं चतुरायूंषि चतुर्गतयः पंचजातयः पंचशरीराणि त्रीण्यंगोपांगानि निर्माणं षट्संस्थानानि षट्संहननानि स्पर्शः रसः गंधः वर्णः चतुरानुपूर्व्याणि अगुरुलघुः उपघातः परघातः आतपः उद्योतः उच्छ्वासः द्विधाविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः साधारणशरीरः त्रसः स्थावरः सुभगः दुर्भगः सुस्वरः दुःस्वरः शुभः अशुभः सूक्ष्मः बादरः पर्याप्तिः अपर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः अनादेयः यशःकीर्तिः अयशःकीर्तिः तीर्थकरत्वं द्विधा गोत्रं पंचान्तरायाः एता विंशत्यधिकशतप्रमाणबंधप्रकृतयो मंतव्याः।

सम्यक्त्वं सम्यग्मिथ्यात्वं पंचशरीरबंधनानि पंचशरीरसंघातानि सप्तस्पर्शाः चतुःरसाः गंधः चतुर्वर्णाः इमा अष्टाविंशत्यबंधप्रकृतयो भवंति।

अब बंध और अबंध योग्य प्रकृतियों का निरूपण करता हूँ।

पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, सोलह कषाय, नव नोकषाय, मिथ्यात्व, चार आयु, चार गतियाँ, पाँच जातियाँ, पाँच शरीर, तीन अंगोपांग, निर्माण, छह संस्थान, छह संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छवास, दो विहायोगति, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थङ्कर, दो गोत्र एवं पाँच अंतराय ये एक सौ बीस बंध योग्य प्रकृतियाँ हैं।

सम्यक्त्व प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, पाँच शरीर बंधन, पाँच शरीर संघात, सात स्पर्श, चार रस, एक गंध, चार वर्ण ये 28 अबंध प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ- पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, 26 मोहनीय क्योंकि सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति का बंध नहीं होता उदय व

मिथ्यात्वगुणस्थाने आहारकशरीरं आहारकांगोपांगं तीर्थकरत्व-मिति प्रकृतित्रयं मुक्त्वा शेषाः सप्तदशाधिकशतसंख्याः प्रकृतीर्मिथ्यादृष्टि र्बध्नाति।

पंचज्ञानावरणानि नवदर्शनावरणानि द्विधावेदनीयं षोडशकषायाः हास्यादिषट्कं स्त्रीवेदः पुंवेदः नपुंसकवेदः तिर्यगायुः मनुष्यायुः देवायुः मनुष्यगतिः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः औदारिकशरीरः वैक्रियिकशरीरः तैजसः कार्मणः औदारिकांगोपांगः वैक्रियिकांगोपांगः निर्माणं समचतुरस्र-न्यग्रोधपरिमंडलस्वातिवामनकुब्जकसंस्थानानि। वज्रर्षभनाराचः वज्रनाराचः नाराचः अर्द्धनाराचः कीलकसंहननं। स्पर्शः रसः गंधः वर्णः। तिर्यग्मनुष्यदेवगति-प्रायोग्यानुपूर्व्याणि। अगुरुलघुः उपघातः परघातः

सत्त्व ही होता है। 4 आयु, 67 नामकर्म की, क्योंकि 5 बंधन और 5 संघात का 5 शरीरों में अंतर्भाव होता है तथा वर्णादि की 16 प्रकृतियों का वर्ण चतुष्क में अंतर्भाव होने से इन 26 प्रकृतियों को बन्ध में पृथक् नहीं गिना है। गोत्र की 2 और अंतराय की 5 इस प्रकार 120 प्रकृतियाँ बन्ध योग्य कही गई हैं शेष 28 अबंधयोग्य कही गई हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक शरीर, आहारक शरीर आंगोपांग, और तीर्थङ्कर इन तीन प्रकृतियों को छोड़ कर शेष 117 प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि बंध करता है।

पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, सोलह कषाय, हास्यादि छह नो कषाय, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसक वेद, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, वैक्रियक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक शरीर आंगोपांग, वैक्रियक शरीर आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र-न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-कुब्जक और वामनसंस्थान, वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच एवं कीलक संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, तिर्यंच, मनुष्य एवं देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उद्योत, उच्छवास, प्रशस्ताप्रशस्त

उद्योतः उच्छ्वासः द्विधाविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः दुर्भगः सुस्वरः दुःस्वरः शुभः अशुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः अनादेयः यशःकीर्ति अयशःकीर्तिः। द्विधागोत्रम्। पंचांतरायाः। एता एकोत्तरशतकर्मप्रकृतिः सासादनगुणस्थाने सासादनसम्यग्दृष्टिर्बध्नाति। मिथ्यात्वं। नपुंसकवेदः। नरकायुः। नरकगतिः। एकद्वित्रिचतुरिंद्रिय-जातयः। हुंडकसंस्थानं। असंप्राप्तासृपाटिकासंहननं। नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यं। आतपः स्थावरः साधारणः सूक्ष्मः अपर्याप्तिः इमा षोडशप्रकृतयः सासादन-गुणस्थाने अबंधका भवन्ति।

पंचज्ञानावरणानि। चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानि निद्रा प्रचला। द्विधा वेदनीयं। अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-क्रोधमानमायालोभाः द्वादश कषायाः हास्यादि षट्कं पुंवेदः देवगतिः मनुष्यगतिः पंचेन्द्रिय जातिः औदारिकवैक्रियिक-तैजस-कार्मण-शरीराणि औदारिकांगोपांगः वैक्रियिकांगोपांगः निर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं वज्रवृषभनाराचसंहननं

विहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, दो गोत्र, पाँच अंतराय ये 101 प्रकृतियाँ सासादन गुणस्थान में सासादन सम्यग्दृष्टि बंध करता है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, साधारण, सूक्ष्म एवं अपर्याप्त इन 16 प्रकृतियों का सासादन गुणस्थान में अबंध होता है।

पाँच ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभ बारह कषायें, हास्यादि छह नो कषाय, पुंवेद, देवगति, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर, औदारिकशरीर आंगोपांग, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र-संस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी,

स्पर्शःरसः गंधः वर्णः देवमनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यद्वयं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः अशुभः वादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः यशःकीर्तिः अयशःकीर्तिः उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः एताश्चतुःसप्तति कर्मप्रकृतिः मिश्रगुणस्थाने सम्यग्मिथ्यादृष्टि-र्बध्नाति। निद्रा-निद्रा प्रचला-प्रचला स्त्यानगृद्धिः चतुरनंतानुबंधि-कषायाः। स्त्रीवेदः तिर्यगायुः मनुष्यायुः देवायुः तिर्यग्गतिः न्यग्रोधपरिमंडलस्वातिवामन - कुब्जकसंस्थानानि। वज्रनाराच-नाराचार्द्धनाराचकीलिकसंहननानि। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं उद्योतः अप्रशस्तविहायोगतिः दुर्भगः दुःस्वरः अनादेयः नीचैर्गोत्रं इमाः सप्तविंशतिप्रकृतयो मिश्रगुणस्थाने अबंधका विज्ञेयाः।

पूर्वोक्त-मिश्रगुणस्थानप्रकृतीर्मनुष्यदेवायुस्तीर्थंकरत्वसहिताः सप्तसप्ततिसंख्यकाः अविरतगुणस्थाने अविरत-सम्यग्दृष्टिर्बध्नाति।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति, प्रत्येकशरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, उच्च गोत्र और 5 अंतराय, इन 74 प्रकृतियों का मिश्र गुणस्थान में सम्यग्मिथ्यादृष्टि बंध करता है। निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबंधी चार कषाय, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यंचगति, न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-वामन-कुब्जक संस्थान, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच-कीलक संहनन, तिर्यंचगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, नीचगोत्र इन 27 प्रकृतियों का मिश्र गुणस्थान में अबंध जानना चाहिए।

पूर्वोक्त मिश्रगुणस्थान में बंधने वाली 74 प्रकृतियाँ तथा मनुष्यायु, देवायु एवं तीर्थङ्कर इन तीन प्रकृतियों सहित, अविरत सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान में 77 प्रकृतियों का बंध होता है।

पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि निद्रा प्रचला द्विधा वेदनीयं प्रत्याख्यानसंज्वलन-क्रोधमानमायालोभाः पुंवेदः हास्यादिषट्कं देवायुः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः वैक्रियिकतैजसकार्मण-शरीराणि वैक्रियिकांगोपांगः निर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं स्पर्शः रसः गंधः वर्णः देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः अशुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः यशःकीर्ति अयशःकीर्तिः तीर्थकरत्वं उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः एताः सप्तषष्टिप्रकृतीः देशविरत-गुणस्थाने संयतासंयतो बध्नाति। अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभः मनुष्यायुः मनुष्यगतिः औदारिकशरीरः औदारिककांगोपांगः वज्रर्षभ-नाराचसंहननः मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं इमा दशप्रकृतयः पंचमगुणस्थाने अबंधका ज्ञातव्याः।

पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि निद्रा

पाँच ज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, प्रत्याख्यान एवं संज्वलनक्रोध-मान-माया-लोभ, पुंवेद, हास्यादि 6 नोकषाय, देवायु, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियकतैजस एवं कार्मण शरीर, वैक्रियिकांगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र संस्थान, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र और पञ्चांतराय इन 67 प्रकृतियों का देशविरत गुणस्थान में संयतासंयत बंध करता है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन दश प्रकृतियों का पञ्चम गुणस्थान में अबंध जानना चाहिए।

पञ्चज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि एवं केवल दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला, दो वेदनीय, संज्वलनचतुष्क, हास्यादिषट्, पुंवेद, देवायु,

प्रचला द्विधावेदनीयं संज्वलनचतुष्कं हास्यादिषट्कं पुंवेदः देवायुः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः वैक्रियिकतैजसकार्मणशरीराणि वैक्रियिकांगोपांगः निर्माणं समचतुरस्रसंस्थानं स्पर्शः रसः गंधः वर्णः देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः अशुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः अस्थिरः आदेयः यशःकीर्तिः अयशःकीर्तिः तीर्थंकरत्वं उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः एताः त्रिषष्ठिकर्मप्रकृतीः प्रमत्तगुणस्थाने प्रमत्तसंयता बध्नाति। एतस्मिन्नेवगुणस्थाने प्रत्याख्यानावरण-प्रकृतयः चतुस्रः अबंधका विज्ञेयाः।

पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुवधिकेवलदर्शनावरणानि निद्रा प्रचला सातावेदनीयं चतुः संज्वलनकषायाः हास्यं रतिः भयं जुगुप्साः पुंवेदः देवायुः देवगतिः पंचेन्द्रियजातिः वैक्रियिकाहारकतैजसकार्मण शरीराणि वैक्रियिकांगोपांगः आहारकांगोपांगः निर्माणं समचतुरस्र-संस्थानं स्पर्शः रसः गंधः वर्णः देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः

देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस एवं कार्मण शरीर, वैक्रियिक आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र संस्थान, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, देवगति - प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, अशुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इन 63 प्रकृतियों का प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत गुणस्थान में बंध करता है। इस गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का अबंध जानना चाहिए।

पाँच ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि एवं केवल दर्शनावरण, निद्रा प्रचला, साता-वेदनीय, संज्वलनकषायचतुष्क, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, देवायु, देवगति, पञ्चेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-आहारक, तैजस-कार्मण शरीर, वैक्रियिक-आहारक आंगोपांग, निर्माण, समचतुरस्र संस्थान, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात,

परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः प्रत्येकशरीरः त्रसः सुभगः सुस्वरः शुभः बादरः पर्याप्तिः स्थिरः आदेयः यशःकीर्तिः तीर्थंकरत्वं उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः एता एकोनषष्टिप्रकृतीः अप्रमत्तगुणस्थाने अप्रमत्तसंयतो बध्नाति। असातावेदनीयं अरतिः शोकः अस्थिरः अशुभः अयशःकीर्तिः एताः षट्प्रकृतयोऽस्मिन् गुणस्थानेऽबंधका भवंति।

देवायुःसंज्ञिकामेकां प्रकृतिं परिहृत्य शेषा अप्रमत्तेबंधप्रकृतीः अपूर्वकरणगुणस्थानस्य प्रथमभागे अष्टपंचाशत्प्रमा अपूर्वकरणो बध्नाति। ततस्ता एव निद्राप्रचलारहिताः षट्पंचाशत्प्रमाप्रकृतीः स एवापूर्वकरणसंख्यात-भागेषु बध्नाति तत ऊर्ध्वं संख्येयभागे पंचेन्द्रिय जातिः वैक्रियिकाहारकतैजस - कार्मणशरीराणि समचतुरस्रसंस्थानं वैक्रियिक- शरीरांगोपांगः आहारकशरीरांगोपांगः वर्णः गंधः रसः स्पर्शः देवगतिः देवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः प्रशस्तविहायोगतिः त्रसः बादरः पर्याप्तिः प्रत्येकशरीरः स्थिरः शुभः

परघात, उच्छवास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, बादर, पर्याप्त, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर, उच्चगोत्र तथा पाँच अंतराय इन 59 प्रकृतियों का अप्रमत्त गुणस्थान में अप्रमत्तसंयत बंध करता है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति इन 6 प्रकृतियों का इस गुणस्थान में अबंध होता है।

अप्रमत्त गुणस्थान में बंध योग्य प्रकृतियों में से देवायु को छोड़कर शेष 58 प्रकृतियों का बंध अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में अपूर्वकरण गुणस्थानवाला जीव करता है। इसके पश्चात् इन 58 प्रकृतियों में से निद्रा और प्रचला से रहित 56 प्रकृतियों का वही अपूर्वकरण गुणस्थान वाला संख्यातवें भाग में बंध करता है इसके संख्यातवें भाग ऊपर जाकर पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, आहारकशरीर आंगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग,

सुभगः सुस्वरः आदेयः निर्माणतीर्थकरत्वं एतास्त्रिंशत्प्रकृतीस्त्यक्त्वा शेषाः षट्विंशतिप्रकृतीः स एव अपूर्वकरणो बध्नाति। किं नामास्ताः प्रकृतयः पंचज्ञानावरणानि - चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि सातावेदनीयं चतुःसंज्वलनकषायाः हास्यं रतिर्भयं जुगुप्सा पुंवेदः यशःकीर्तिः उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायश्चेति।

ततः अनिवृत्तिकरणगुणस्थानस्य प्रथमभागे एवं अपूर्वकरण-प्रकृतिषु हास्यरतिभयजुगुप्सारहिता द्वाविंशतिप्रमाः अनिवृत्तिकरणे बध्नाति। तत ऊर्ध्वं पुंवेदरहिता एकविंशतिप्रकृतिं अनिवृत्तिद्वितीयभागे बध्नाति। ततः संज्वलनक्रोधरहितः विंशतिप्रकृतीः तृतीयभागे बध्नाति। ततो मानरहिताः एकोनविंशति-प्रकृतीः चतुर्थभागे बध्नाति। ततो मायारहिताः अष्टादशप्रकृतीः पंचमभागे बध्नाति। किं नामास्ताः पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरणानि सातावेदनीयं लोभः यशःकीर्तिः उच्चैर्गोत्रं पंचांतरायाः।

सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर इन तीस प्रकृतियों को छोड़कर शेष 26 प्रकृतियों का वह अपूर्वकरण गुणस्थानवाला बांधता है।

26 प्रकृतियों के नाम इस प्रकार से हैं - पाँच ज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण, सातावेदनीय, संज्वलनकषायचतुष्क, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुंवेद, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और 5 अंतराय।

इसके बाद अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में अपूर्वकरण गुणस्थान की 26 प्रकृतियों में से हास्य, रति, भय और जुगुप्सा से रहित शेष 22 प्रकृतियों का अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में बंध करता है। इसके ऊपर अनिवृत्तिकरण के दूसरे भाग में पुरुष वेद रहित शेष 21 प्रकृतियों का बंध करता है। तीसरे भाग में संज्वलन क्रोध रहित शेष 20 प्रकृतियों का बंध करता है। चतुर्थ भाग में संज्वलन मान रहित 19 प्रकृतियों का बंध करता है। पञ्चम भाग में संज्वलन माया रहित 18 प्रकृतियों का बंध करता है। इन 18 प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं - पाँच ज्ञानावरण, चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवलदर्शनावरण, सातावेदनीय, संज्वलनलोभ, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय।

ततः ऊर्ध्वं त एवानिवृत्तिप्रकृतयो लोभरहितः सप्तदशप्रमाणाः सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने सूक्ष्मसाम्परायो बध्नाति।

ततः ऊर्ध्वं सातावेदनीयाख्यामेकां प्रकृतिं उपशांतकषाय क्षीण कषायः सयोगिकेवली बध्नाति। अयोगकेवली अबंधको विज्ञेयः।

इसके ऊपर अनिवृत्तिकरण की उक्त प्रकृतियों में से लोभ रहित 17 प्रकृतियों का सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्पराय वाला जीव बन्ध करता है।

इसके ऊपर उपशांत कषाय-क्षीणकषाय-सयोगकेवलीजिन एक साता वेदनीय का बंध करते हैं। अयोग केवली को अबंधक जानना चाहिए।

विशेष टिप्पण- यहाँ जो ग्रन्थकार ने गुणस्थानों में अबंधक प्रकृतियों का कथन किया है वह पूर्व के गुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त हुई प्रकृतियों मात्र का किया है। जैसे पञ्चम गुणस्थान में अबंधक प्रकृतियाँ दश कही गई हैं। ये दस प्रकृतियां चतुर्थ गुणस्थान में व्युच्छित्ति को प्राप्त हुई प्रकृतियाँ हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीव मात्र दस प्रकृतियों का ही अबंधक है। किन्तु प्रथम आदि गुणस्थानों में व्युच्छित्ति को प्राप्त प्रकृतियों का भी अबंधक है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार आगे के गुणस्थानों में भी ग्रहण करना चाहिए। अन्यथा ग्रन्थकार की व्यवस्था नहीं बन सकेगी। विशेष जानकारी के लिए बंध-अंबध-बंध व्युच्छित्ति वाली अग्रिम संदृष्टि देखें।

प्रकृतियों का गुणस्थान में बंध अबंध का कथन करने के पश्चात् बंध व्युच्छित्ति का निरूपण उपयोगी जानकर यहाँ पर दिया गया है जो इस प्रकार से है-

मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में क्रमशः बंध व्युच्छित्ति-

मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म, स्थावर, आतप,

अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु इन 16 प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति मिथ्यात्व गुणस्थान के अंत में होती है।

अनंतानुबंधी चतुष्क, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-कुब्जक और वामन संस्थान, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलक संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेदी, नीच गोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत, इन 25 प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति सासादन गुणस्थान में होती हैं।

तृतीय मिश्र गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति का अभाव है। चतुर्थ गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिक शरीर, औदारिकांगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्यत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु इन दस प्रकृतियों की बन्धव्युच्छित्ति होती है।

देशसंयत गुणस्थान में प्रत्याख्यान चतुष्क की बंध व्युच्छित्ति होती है।

प्रमत्त संयत गुणस्थान में अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयश: कीर्ति, अरति और शोक इन छह प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में एक देवायु की बंध व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों की, छठे भाग में तीर्थङ्कर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, तैजस-कार्मण-आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियकशरीरांगोपांग, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय, इन तीस प्रकृतियों की तथा सप्तम भाग में हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है। इस प्रकार अपूर्वकरण गुणस्थान में कुछ 36 प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पाँच भागों में क्रमश: पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध-मान-माया और लोभ इन पाँच प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की

चार, अंतराय की पाँच, यश:कीर्ति और उच्चगोत्र इन 16 प्रकृतियों की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

उपशांत मोह और क्षीणमोह गुणस्थान में बन्ध व्युच्छित्ति का अभाव है। तथा सयोग केवली गुणस्थान में एक सातावेदनीय की बन्ध व्युच्छित्ति होती है।

विशेष- प्रसंगानुसार प्रकृति बंध के विशेष नियम इस प्रकार से ज्ञातव्य हैं - तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध सम्यक्त्व अवस्था में ही होता है। आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग का बंध अप्रमत्तगुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान के छठे भाग तक होता है तथा आयुकर्म का बंध मिश्र गुणस्थान और निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था को प्राप्त मिश्रकाय योग के बिना मिथ्यात्व गुणस्थान से अप्रमत्तगुणस्थान पर्यंत होता है। अवशेष प्रकृतियों का बन्ध मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में अपनी-अपनी बंध व्युच्छित्ति पर्यंत जानना। प्रथमोपशम सम्यक्त्व तथा शेष तीन द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व में असंयत से अप्रमत्त गुणस्थान पर्यंत मनुष्य ही तीर्थङ्कर प्रकृति के बंध का प्रारंभ केवली अथवा श्रुत केवली के पादमूल में करते हैं।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व को पृथक् करने का कारण यह है कि इसका काल अंतर्मुहूर्त होने से इस सम्यक्त्व में सोलहकारण भावना नहीं भा सकते। अत: इस सम्यक्त्व में तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध नहीं होता। इस प्रकार किन्हीं आचार्यों ने कहा है। इसके बंध का प्रारंभ केवलीद्वय के पादमूल में ही होता है। मनुष्य ही तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध करते हैं अन्य गति वाले जीव तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध प्रारंभ नहीं कर सकते, क्योंकि उनके विशिष्ट सामग्री का अभाव है तथा अन्यत्र उस प्रकार की परिणाम विशुद्धि नहीं हो सकती, जिससे तीर्थङ्कर प्रकृति के बंध का प्रारंभ हो सके। तीर्थङ्कर प्रकृति के बंध का प्रारंभ तो चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम गुणस्थान पर्यंत ही होता है, किन्तु आगे आठवे गुणस्थान के छठे भाग पर्यंत होता रहता है।

गुणस्थानों में बन्ध-अबन्ध एवं व्युच्छित्ति योग्य प्रकृतियों की संदृष्टि-

गुणस्थान	बन्धरूप प्रकृतियाँ	अबंधरूप प्रकृतियाँ	बन्ध से व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ
मिथ्यात्व	117	3 (आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, तीर्थंकर)	16 (मिथ्यात्व, हुण्डक संस्थान, नपुंसकवेद,असम्प्राप्ता-सृपाटिका संहनन, एकेन्द्रिय - द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, स्थावर, आतप, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकगत्यानु-पूर्वी और नरकायु)
सासादन	101	19 (उपर्युक्त 3 + मिथ्यात्व गुणस्थान की 16 व्युछिन्न प्रकृतियाँ)	25 (अनंतानुबंधी चतुष्क - स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, न्यग्रोधपरिमण्डल-स्वाति-कुब्जक और वामन संस्थान, वज्रनाराच-नाराच-अर्धनाराच और कीलक संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु और उद्योत)
मिश्र	74	46 (उपर्युक्त 19+ सासादन गुण. की व्युछिन्न 25 प्रकृतियाँ+ मनुष्यायु, देवायु)	शून्य (0)

असंयत	77	43 (उपर्युक्त 46-तीर्थंकर, मनुष्यायु, देवायु)	10(अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, वज्रर्षभनाराचसंहनन, औदारिक शरीर, औदारिकांगोपांग, मनुष्यगति, मनुष्य-गत्यानुपूर्वी और मनुष्यायु)
देशसंयत	67	53 (उपर्युक्त 43+ असंयत गुणस्थान की व्युछिन्न 10 प्रकृतियाँ)	4 (प्रत्याख्यानचतुष्क)
प्रमत्त संयत	63	57 (उपर्युक्त 53+ देशसंयत गुणस्थान की व्युछिन्न 4 प्रकृतियाँ)	6 (अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयश:कीर्ति, अरति और शोक)
अप्रमत्त संयत	59	61 (उपर्युक्त 57+6 अस्थिर, अशुभ, असाता वेदनीय, अयश:कीर्ति, अरति और शोक) -2 (आहारक द्विक)	1 (देवायु)
अपूर्वकरण **भाग-1** **भाग-6**	58 56	62 (उपर्युक्त 61+ देवायु) 64 (उपर्युक्त 62+ निद्रा और प्रचला)	2 (निद्रा और प्रचला) 30 (तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्त विहायोगति, पंचेन्द्रिय-जाति, तैजस, कार्मणशरीर, आहारक द्विक, समचतुरस्रसंस्थान,

			देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय)
भाग-7	26	94 (उपर्युक्त 64+ अपूर्वकरण के छठे भाग की व्युच्छिन्न 30 प्रकृतियाँ)	4 (हास्य, रति, भय, जुगुप्सा)
अनिवृत्तिकरण			
भाग-1	22	98 (उपर्युक्त 94+ हास्य, रति, भय और जुगुप्सा)	1 (पुरुषवेद)
भाग-2	21	99 (उपर्युक्त 98+ पुरुषवेद)	1 (संज्वलनक्रोध)
भाग-3	20	100 (उपर्युक्त 99+ संज्वलनक्रोध)	1 (संज्वलनमान)
भाग-4	19	101 (उपर्युक्त 100+ संज्वलनमान)	1 (संज्वलनमाया)
भाग-5	18	102 (उपर्युक्त 101+ संज्वलनमाया)	1 (संज्वलनलोभ)
सूक्ष्मसाम्पराय	17	103 (उपर्युक्त 102+ संज्वलनलोभ)	16 (ज्ञानावरण की 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र)

उपशांतकषाय	1	119(उपर्युक्त 103+ सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान की व्युच्छिन्न 16 प्रकृतियाँ)	शून्य (0)
क्षीण कषाय	1	119 (उपर्युक्त)	शून्य (0)
सयोग केवली	1	119 (उपर्युक्त)	1 (सातावेदनीय)
अयोग केवली	0	120 (उपर्युक्त + सातावेदनीय)	शून्य (0)

स्थितिबंधः

कर्मणां स्थितिहंतारं नत्वानंतगुणांबुधिं।
स्थितिबंधसमासेन वक्ष्ये तत् स्थितिहानये॥

पंचज्ञानावरणनवदर्शनावरणासातावेदनीयपंचांतरायकर्मणां उत्कृष्टोस्थितिबंधस्त्रिंशत्कोटिकोटिसागरप्रमाणः। मिथ्यात्वस्य उत्कृष्टो-स्थितिः सप्ततिकोटिकोटिसागरप्रमाणः। सातावेदनीयस्त्रीवेदमनुष्यगति मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वाणां उत्कृष्टास्थितिः पंचदशसागरोपम कोटी कोट्यः। षोडशकषायाणां परमः स्थितिबंधः जलधीनाम् चत्वारिंशत् - कोटिकोट्यः। पुंवेदहास्य-रतिदेवगतिसमचतुस्रसंस्थानबज्रर्षभनाराच-संहननदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यप्रशस्त-विहायोगतिस्थिरशुभसुभग सुस्वर आदेय-यशःकीर्तिउच्चगोत्राणां उत्कृष्टस्थिति-बंधः दशसागरोपम-कोटि कोट्यः। नपुंसकवेदारतिशोकभयजुगुप्सानरकगति तिर्यग्गत्यैकेन्द्रिय

कर्मों की स्थिति को नष्ट करने वाले और अनंत गुणों के सागर ऐसे अर्हंत और सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर, मैं अपने कर्मों की स्थिति को नाश करने के लिए संक्षेप में प्रकृति बंध के पश्चात् स्थिति बंध को कहूँगा।

पाँच ज्ञानावरण, नवदर्शनावरण, असातावेदनीय, पाँच अंतराय का उत्कृष्ट स्थिति बंध 30 कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थिति बंध सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी का उत्कृष्ट स्थितिबंध 15 कोड़ाकोड़ीसागर है। सोलह कषायों का उत्कृष्ट स्थिति बंध चालीस कोड़ाकोड़ीसागर है। पुंवेद, हास्य, रति, देवगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभ-नाराचसंहनन, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, उच्च गोत्र का उत्कृष्ट स्थिति बंध दस कोड़ाकोड़ी सागर है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक-

पंचेन्द्रियजात्यौदारिकवैक्रियिकतैजसकार्मणशरीरहुंडकसंस्थानमौदारिक वैक्रियिकांगोपांग-असंप्राप्तासृपाटिका संहननवर्णरस गंध-स्पर्शनरकगति तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्वागुरुलघूपघात-परघातोच्छ्वासातपोद्योता-प्रशस्त-विहायोगतित्रसस्थावरबादरपर्याप्ति-प्रत्येकशरीरा-स्थिराशुभ-दुर्भग-दुःस्वरानादेयायशःकीर्तिनिर्माणनीचैर्गोत्राणाम् उत्कृष्टा स्थितिः विंशतिः कोटि-कोटिसागरप्रमाणः। नारकदेवायुषोः परा स्थितिः त्रय स्त्रिंशत्सागरोपमाणि तिर्यग्मनुष्यायुषोः परमा स्थितिस्त्रीणिपल्योपमानि द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिंद्रियजातिवामनसंस्थानकीलिकसंहननसूक्ष्मापर्याप्तिसाधारण-प्रकृतिनामुत्कृष्टास्थितिरष्टादशावधिकोटीकोट्यः। आहारकशरीराहारा-कांगोपांगतीर्थंकरनाम्ना उत्कृष्टस्थितिबंधः अंतः कोटाकोटिप्रमाणं। न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थानं-वज्रनाराचसंहननयोरुत्कृष्टस्थिति द्वादशाब्धि कोटीकोट्यः। स्वातिसंस्थान-नाराचसंहननयोश्चतुर्दश जलधिकोटि-

---

वैक्रियक-तैजस-कार्मण शरीर, हुण्डकसंस्थान, औदारिक-वैक्रियिक आंगोपांग, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, वादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीचगोत्र की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। नरकायु एवं देवायु की उत्कृष्ट स्थिति 33 सागर है। तिर्यंचायु-मनुष्यायु की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, वामनसंस्थान, कीलक संहनन, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण शरीर का उत्कृष्ट स्थिति बंध - 18 कोड़ा-कोड़ी सागर है। आहारकशरीर, आहारकशरीरांगोपांग और तीर्थङ्कर प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति अंतः कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है। न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान, वज्रनाराच संहनन की उत्कृष्ट स्थिति 12 कोड़ा-कोड़ी सागर है। स्वाति संस्थान, नाराच संहनन की उत्कृष्ट स्थिति 14 कोड़ा-कोड़ी सागर है।

कोटिसंख्यका। कुब्जकसंस्थानार्द्धनाराचसंहननयोः परा स्थितिबंधः षोडशसागरोपम-कोटीकोट्यः।

सर्वत्र यावंत्यः सागरोपमकोटिकोट्यस्तावंति वर्षशतान्याबाधा कर्मस्थितिः। येषां तु अंतःकोटिकोट्यः स्थितिस्तेषामांतर्मुहूर्तः आबाधा। इयं संज्ञिपंचेन्द्रिस्योत्कृष्टा कर्मबंधस्थितिः।

एकेन्द्रियस्य पुनः मिथ्यात्वस्योत्कृष्टस्थितिबंधः एकसागरः। कषायाणां सागरोपम-सप्तभागानां चत्वारोभागाः। ज्ञानावरणदर्शन-वरणांतरायासाता-वेदनीयामुत्कृष्टस्थितिबंधः सागरसप्तभागानां त्रयोभागाः। नामगोत्रनो-कषायाणां सागरसप्तभागानां द्वौभागौ।

द्वीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्योत्कृष्टा स्थितिः पंचविंशतिसागरप्रमाः। त्रीन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्योत्कृष्टा स्थितिः पंचाशत्सागरोपमसंख्यका।

कुब्जक संस्थान, अर्द्धनाराच संहनन की उत्कृष्ट स्थिति 16 कोड़ा-कोड़ी सागर है।

सर्वत्र जितने कोड़ा-कोड़ी सागरोपम कर्म स्थिति है उतने सौ वर्ष उस कर्म की आबाधा होती है। जिन कर्मों की अन्तः कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण स्थिति है, उनकी आबाधा अंतर्मुहूर्त है।

ऊपर यह संज्ञीपञ्चेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से उत्कृष्टकर्म बंध का निरूपण किया गया है।

एकेन्द्रिय के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थिति बंध एक सागर है। एकेन्द्रिय के कषायों की उत्कृष्ट स्थिति 4/7 सागर प्रमाण है तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय इन तीन घातियाकर्मों की 19 प्रकृतियों की तथा असातावेदनीय की एकेन्द्रिय जीव के उत्कृष्ट स्थिति 3/7 सागर बंधती है। नाम, गोत्र एवं नोकषायों की एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति 2/7 सागर प्रमाण बंधती है।

द्वीन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 25 सागर प्रमाण है। त्रीन्द्रिय के मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 50 सागरोपम है। चतुरिन्द्रिय के

चतुरिन्द्रि-यस्य मिथ्यात्वस्य परा स्थितिः बंधः शतसागरप्रमाणः। असंज्ञिपंचेन्द्रियस्य मिथ्यात्वस्योत्कृष्टा स्थितिबंधः सहस्रसागरप्रमा। द्वीन्द्रियादीनां शेषकर्मणां स्थितिबंधः आगमात् विज्ञेयः।

पंचज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनावरण संज्वलनलोभ-पंचां-तरायाणां जघन्यस्थितिबंधोऽन्तर्मुहूर्त्तः। सातावेदनीयस्य द्वादशमुहूर्तः यशःकीर्तिउच्चैर्गोत्रयोरष्टौ-मुहूर्ताः। क्रोधसंज्वलनस्य द्वौमासौ संज्वलन-मानस्यैको मासः। संज्वलन मायायाःअर्द्धमासः। पुरुषवेदस्याष्टौ संवत्सराः। निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धिनिद्राप्रचलासाता वेदनीयानां सागर-सप्तभागानां त्रयोभागाः पल्योपमासंख्यातभागहीनाः। मिथ्यात्वस्य सागरस्य सप्तसप्तभागाः पल्योपमासंख्यात-भागहीनाः। अनंतानुबंध्य-

---

मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति 100 सागर प्रमाण है। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मिथ्यात्व का उत्कृष्ट स्थिति बंध एक हजार सागर प्रमाण है। द्वीन्द्रियादि के शेष कर्मों का स्थिति बंध आगम से जानना चाहिए।

विशेषार्थ- द्वीन्द्रिय जीव के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से 25 गुणी अधिक बंधती है। त्रीन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से 50 गुणी अधिक बंधती है। चतुन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से सौ गुणी एवं असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के सभी कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय से हजार गुणी अधिक बंधती है।

पञ्च ज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण, संज्वलन लोभ एवं पाँच अंतरायों की जघन्य स्थिति बंध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। सातावेदनीय की 12 मुहूर्त, यशःकीर्ति और उच्चगोत्र की आठ मुहूर्त, संज्वलन क्रोध की दो माह, संज्वलन मान की एक माह, संज्वलन माया की पन्द्रह दिन, पुरुषवेद की आठ वर्ष, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय की पल्योपम के असंख्यात वें भाग से हीन 3/7 सागर प्रमाण जघन्य स्थिति है। मिथ्यात्व की पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 7/7 सागर प्रमाण है। अनंतानुबंधी,

प्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानानां सागरोपम-सप्तभागानां चत्वारो भागाः पल्योपमा-संख्यातभागहीनाः। अष्टनोकषायाणां सागरसप्तभागानां द्वौभागौ पल्योपमासंख्यातभागहीनौ। नारकदेवायुषोर्दशवर्षसहस्राणि तिर्यग्मनुष्या-युषोरंतर्मुहूर्तः। नरकगतिदेवगतिवैक्रियिकशरीरांगोपांग-नरकगतिदेवगति-प्रायोग्यानुपूर्वाणां सागरसहस्रसप्तभागानाम् द्वौभागौ पल्योपमसंख्यातभागहीनौ। आहारकशरीर-आहारकांगोपांग-तीर्थकराणां अंतःकोटीकोटी-सागरोपमः। शेषाणां सागरोपमसप्तभागानाम् द्वौभागौ पल्योपमासंख्यातभाग-हीनौ।

सर्वत्र जघन्यस्थितिरिति संबंधनीया। सर्वत्र चान्तर्मुहूर्तआबाधा आबाधोन-कर्मस्थितिः कर्मनिषेकः।

अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 4/7 सागर प्रमाण है। पुरुषवेद को छोड़कर शेष आठ नोकषायों की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 2/7 सागर प्रमाण है। नरकायु एवं देवायु की जघन्य स्थिति दश हजार वर्ष और तिर्यंचायु एवं मनुष्य आयु की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है। नरकगति, देवगति, वैक्रियकशरीर, वैक्रियिकशरीर आंगोपांग, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी की जघन्य स्थिति पल्योपम के संख्यातवें भाग से कम 2000/7 सागर प्रमाण है। आहारकशरीर, आहारकशरीरआंगोपांग और तीर्थङ्कर प्रकृति का जघन्य स्थिति बंध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। शेष प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम 2/7 सागर प्रमाण है।

ऊपर जो कर्मों की स्थिति का उल्लेख है वहाँ सर्वत्र जघन्य स्थिति से सम्बन्ध जोड़ना चाहिए तथा इन सभी का आबाधाकाल अंतर्मुहूर्त मात्र है। इन सभी कर्मों की आबाधाकाल से कम कर्म स्थिति रूप कर्म निषेक होते हैं।

सर्वायं जघन्यस्थितिबंधः सामान्यापेक्षया संज्ञिपंचेन्द्रियस्य एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिंद्रियासंज्ञीपंचेन्द्रियाणां जघन्य-स्थिति-बंधो य एवोत्कृष्टः। उक्ता स एव पल्योपमासंख्यातभागहीनो दृष्टव्यः।

सामान्य अपेक्षा से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय का जो जघन्य स्थिति बंध है वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चन्द्रिय जीवों के जघन्य स्थिति बंध में उत्कृष्ट के समान है तथा यहाँ सभी जगह पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन की संयोजना करना चाहिए।

विशेषार्थ- उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति बंध के स्वामी सिद्धान्त ग्रन्थानुसार निम्न हैं- शुभाशुभ कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध यथा योग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले चारों गति के जीवों के ही होता है। तिर्यंच, मनुष्य व देवायु बिना अन्य 117 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है और जघन्य स्थिति बन्ध यथायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है। तिर्यञ्च आदि तीन आयु का उत्कृष्ट स्थिति बंध यथायोग्य विशुद्ध परिणामों से होता है तथा जघन्य स्थिति बन्ध यथायोग्य संक्लेश परिणामों से होता है।

आहारकद्विक, तीर्थङ्कर और देवायु बिना शेष 116 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध मिथ्यादृष्टि जीव ही करता है तथा आहारकद्विक आदि चार प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध सम्यग्दृष्टि जीव ही करता है।

देवायु की उत्कृष्ट स्थिति को अप्रमत्त गुणस्थान में जाने के सम्मुख हुआ प्रमत्त गुणस्थान वाला जीव बांधता है। आहारकद्विक की उत्कृष्ट स्थिति को प्रमत्त गुणस्थान के सन्मुख हुआ अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती संक्लेश परिणामी जीव बांधता है। तीर्थङ्कर प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति को दूसरे या तीसरे नरक में जाने के सम्मुख हुआ क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि असंयत मनुष्य ही बांधता है। देवायु बिना शेष तीन आयु, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिक शरीर आंगोपांग, नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय और सूक्ष्मादि तीन इन सभी का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध मनुष्य और तिर्यंच जीव ही करते हैं। औदारिक द्विक,

तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, उद्योत व असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन की उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टि देव और नारकी जीव ही बाँधते हैं। एकेन्द्रिय आतप और स्थावर इन तीन प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध मिथ्यादृष्टि देव करते हैं। शेष 92 प्रकृतियों को उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाले तथा ईषत् मध्यम संक्लेश परिणाम वाले चारों गतियों के जीव बाँधते हैं। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति, उच्चगोत्र और सातावेदनीय का जघन्य स्थिति बंध क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव के अन्तिम समय में होता है। पुरुषवेद एवं संज्वलन कषाय चतुष्क का जघन्य स्थिति बंध क्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती जीव के होता है। तीर्थङ्कर और आहारक द्विक का जघन्य स्थिति बंध अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव के होता है। देव गति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक आंगोपांग का जघन्य स्थिति बंध असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के होता है। देवायु और नरकायु का जघन्य स्थिति बंध संज्ञी अथवा असंज्ञी जीव के होता है। मनुष्य और तिर्यंच आयु का जघन्य स्थिति बंध कर्मभूमियाँ मनुष्य या तिर्यंच करते है। निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी चतुष्क, अप्रत्याख्यान चतुष्क, प्रत्याख्यान चतुष्क, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस-कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास, आतप, उद्योत, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण और नीच गोत्र इन प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बंध सर्व विशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीव करता है।

मूल-उत्तर प्रकृतियों की उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति संबंधी संदृष्टि

प्रकृतियाँ		स्थितिबंध	
मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	उत्कृष्ट	जघन्य
ज्ञानावरण	मतिज्ञानावरणादि पाँच	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरण	निद्रा-निद्रा,	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	प्रचला-प्रचला	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	व स्त्यानगृद्धि	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	निद्रा व प्रचला	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
	चक्षु, अचक्षु,	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
	अवधि व केवलदर्शन	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीय			
	साता	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	12 मुहूर्त
	असाता	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	3/7 सा.*
मोहनीय			
1.			
दर्शनमोहनीय	मिथ्यात्व	70 कोड़ाकोड़ी सागरो.	7/7 सा.*
2.			
चारित्रमोहनीय 1	अनंतानुबंधी 4	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	4/7 सा.*
कषायवेदनीय	अप्रत्याख्यान 4	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	4/7 सा.*
	प्रत्याख्यान 4	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	4/7 सा.*
	संज्वलन क्रोध	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2 मास
	संज्वलन मान	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	1 मास
	संज्वलन माया	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	1 पक्ष
	संज्वलन लोभ	40 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
2			
नोकषायवेदनीय	स्त्रीवेद	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*

	पुरुषवेद	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	8 वर्ष
	नपुंसकवेद	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	हास्य	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	रति	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अरति	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	शोक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	भय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	जुगुप्सा	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
आयु	नरकायु	33 सागरोपम	10 सहस्रवर्ष
	तिर्यंचायु	3 पल्योपम	अन्तर्मुहूर्त
	मनुष्यायु	3 पल्योपम	अन्तर्मुहूर्त
	देवायु	33 सागरोपम	10 सहस्रवर्ष
नाम			
पिण्डप्रकृतियाँ.			
1. गति	नरक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/7 सा.*
	तिर्यंच	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	मनुष्य	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	देव	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/7 सा.*
2. जाति	एकेन्द्रिय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	द्वीन्द्रिय	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	त्रीन्द्रिय	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	चतुरिन्द्रिय	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	पंचेन्द्रिय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
3. शरीर 5	औदारिक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
4.			2000/7 सा.*
शरीरबन्धन 5	वैक्रियिक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अंतः कोड़ाकोड़ी
5.			
शरीरसंघात 5	आहारक	अंतः कोड़ाकोड़ी	

	तैजस	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	कार्मण	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
6. शरीरसंस्थान	समचतुरस्र	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	न्यग्रोधपरिमण्डल	12 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	स्वाति	14 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	कुब्जक	16 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	वामन	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	हुण्डक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
7. शरीर आंगोपांग	औदारिक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	वैक्रियिक	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/7 सा.*
	आहारक	अंतः कोड़ाकोड़ी	अंतः कोड़ाकोड़ी
8. शरीरसंहनन	वज्रर्षभनाराच	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	वज्रनाराच	12 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	नाराच	14 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	अर्धनाराच	16 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	कीलक	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	सृपाटिका	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
9. वर्ण	कृष्णादि 5	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
10. गंध	सुगंध	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	दुर्गंध	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
11. रस	तिक्तादि 5	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
12. स्पर्श	कर्कशादि 8	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
13. आनुपूर्वी	नरकगति आनुपूर्वी	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/7 सा.*
	तिर्यंचगति आनुपूर्वी	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	मनुष्यगति आनुपूर्वी	15 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.*
	देवगति आनुपूर्वी	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2000/7 सा.*

14. विहायोगति (अपिण्ड प्रकृतियाँ.)	प्रशस्त	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	अप्रशस्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	अगुरुलघु	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	उपघात	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	परघात	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	उच्छ्वास	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	आतप	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	त्रस	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	स्थावर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	बादर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	सूक्ष्म	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	पर्याप्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	अपर्याप्त	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	प्रत्येकशरीर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	साधारणशरीर	18 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	स्थिर	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	अस्थिर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	शुभ	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	अशुभ	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	सुभग	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	दुर्भग	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	सुस्वर	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	दुःस्वर	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	आदेय	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	अनादेय	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	यशःकीर्ति	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	8 मुहूर्त
	अयशःकीर्ति	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋

गोत्र	निर्माण	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋ अंतः कोड़ाकोड़ी
	तीर्थंकर	अंतः कोड़ाकोड़ी	8 मुहूर्त
	उच्च	10 कोड़ाकोड़ी सागरो.	2/7 सा.❋
	नीच	20 कोड़ाकोड़ी सागरो.	अन्तर्मुहूर्त
अंतराय	दान-लाभादि 5	30 कोड़ाकोड़ी सागरो.	

नोट- 1. उपर्युक्त संदृष्टि ध. पु. 6 व महाबंध पु. 2 के अनुसार है।

2. यह संदृष्टि (❋) इस चिन्ह 3/7, 7/7, 4/7, 2/7 सागररूप संख्या पल्योपम के असंख्यातवें भाग से हीन ग्रहण करना चाहिए, किन्तु 2000/7 सागररूप संख्या पल्योपम के संख्यातवें भाग से हीन ग्रहण करना चाहिए।

3. संदृष्टि में 2000/7 सागर❋ दिया है। वह असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय की अपेक्षा दिया है। क्योंकि वैक्रियिक षट्क का बंध एक इन्द्रिय एवं विकलत्रय जीव नहीं करते हैं। असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध एक हजार सागर है। इससे नाम और गोत्र का जघन्य स्थिति बंध पल्योपम के असंख्यातवे भाग कम 2000/7 सागर होता है।

शंका- स्त्रीवेद, हास्य, रति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर आदि प्रकृतियों का जघन्य स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवे भाग से कम सागरोपम के 2/7 भाग मात्र घटित नहीं होता है। क्योंकि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियों का बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बंध नहीं होता है।

समाधान- यद्यपि इन स्त्रीवेदादि प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण नहीं है तथापि मूल प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति के अनुसार ह्रास को प्राप्त होती हुई इन प्रकृतियों का पल्योपम के असंख्यातवें भाग से कम सागरोपम के 2/7 भाग मात्र जघन्य स्थिति बंध में कोई विरोध नहीं है। (ध.पु. 6 पृ. 190)

अनुभागबंधः

कर्मानुभागनिर्मुक्तं, वीतरागं जगद्गुरुं।
नत्वा वक्ष्येऽनुभागाख्यं, बंधं तत्रसहानये॥

ज्ञानावरणादिकर्मणां यो रसो (योऽनुभावो) रागद्वेषादिपरिणामो वाध्यवसानजनितःशुभःसुखदः अशुभो दुःखदः सोनुभागबंधः। यथा अजागोमहिष्यादिक्षीराणां तीव्रमंदादिभावेन रस-विशेषो बहुधा भवति तथा कर्मपुद्गलानां तीव्रमंदादिभावेन स्वगतसुखदुःखादिदानसामर्थ्य विशेषः। उत्कृष्टजघन्यादिभेदभिन्नो बहुधा कुत्रचिदात्मनि शुभपरिणाम-प्रकर्षात् शुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः अशुभप्रकृतीनां निकृष्टः अशुभ परिणामप्रकर्षे अशुभप्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभवः शुभप्रकृतीनां निःकृष्टोऽ-नुभवः।

अष्ट कर्मों के फल से मुक्त राग रहित तीनों लोकों के गुरु सर्वज्ञ देव को नमस्कार कर मैं अपने कर्म रूपी फल से प्राप्त होने वाले रस को नाश करने के लिए कर्मों के फल का निरूपण करने वाले अनुभाग बंध का प्रकरण कहता हूँ।

ज्ञानावरणादि कर्मों का फल या विपाक जो राग द्वेषादि अध्यवसान से उत्पन्न होने वाला शुभ सुख देने वाला, अशुभ दुःख देने वाला है, वह अनुभागबंध है। जिस प्रकार बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध का अलग-अलग तीव्र मंद आदि रूप से रस विशेष (माधुर्य तीखा धीमादि रूप) होता है उसी प्रकार कर्म पुद्गलों का अलग-अलग स्वागत सामर्थ्य विशेष अनुभाग है। कर्मों के उत्कृष्ट जघन्य आदि बहुत भेदों से कभी जीव के शुभ परिणामों के प्रकर्ष भाव के कारण शुभ प्रकृतियों का प्रकृष्ट अनुभागबंध होता है और अशुभ प्रकृतियों का निकृष्ट अनुभागबंध होता है तथा अशुभ परिणामों के प्रकर्ष भाव के कारण अशुभ प्रकृतियों का प्रकृष्ट अनुभाग बंध होता है और शुभ प्रकृतियों का निकृष्ट अनुभाग बंध होता है।

विशेषार्थ- सातावेदनीयादि शुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबंध विशुद्ध परिणामों से होता है और असातावेदनीयादि अशुभ (पाप) प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबंध संक्लेश परिणामों से होता है तथा इनसे विपरीत परिणामों से जघन्य अनुभागबंध होता है अर्थात् शुभ-प्रकृतियों का संक्लेश परिणामों से तथा अशुभ प्रकृतियों का विशुद्ध परिणामों से जघन्य अनुभागबंध होता है। इस प्रकार सभी प्रकृतियों का अनुभागबंध जानना। मंद कषाय रूप से विशुद्ध परिणाम तथा तीव्र कषाय रूप संक्लेश परिणाम होते हैं।

शंका- शुभ प्रकृति का संक्लेश परिणामों से जघन्य अनुभागबंध होता है और विशुद्ध परिणामों से पाप-प्रकृति का जघन्य अनुभागबंध होता है। ऐसा सिद्धान्त का कथन है। इसमें शंका यह है कि प्रथम तो संक्लेश-परिणामों से शुभ-प्रकृति का बंध ही नहीं होता, क्योंकि संक्लेश परिणामों को पाप परिणाम कहते हैं और पाप परिणामों से शुभ का बंध नहीं होता क्योंकि पाप परिणामों से पाप ही का बंध होता है? इसको उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

समाधान- शुभ परिणामों से शुभ प्रकृतियों का ही आस्रव व बंध होता है और अशुभ परिणामों से पाप प्रकृतियों का ही आस्रव और बंध होता है ऐसा एकान्त नियम नहीं है। क्योंकि 47 ध्रुवबंधी प्रकृतियों में पुण्य और पाप दोनों प्रकार की प्रकृतियाँ है। जिनका शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के परिणामों से निरंतर आस्रव व बंध होता रहता है। वे ध्रुव बंधी 47 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैः-

पाँच ज्ञानावरण, नो दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण नामकर्म।

इन 47 ध्रुवबंधी प्रकृतियों में से तैजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु और निर्माण ये चार शुभ (पुण्य) प्रकृतियाँ हैं और शेष 43 अशुभ (पाप) प्रकृतियाँ हैं। इस प्रकार अशुभ परिणामों से उपर्युक्त चार शुभ प्रकृतियों का तो अवश्य ही बंध होता है। इनके अतिरिक्त औदारिक

या वैक्रियिक शरीर, पञ्चेन्द्रिय जाति, त्रस काय, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, तिर्यंचायु का भी यथायोग्य जघन्य अनुभागबंध होता है। शुभ परिणामों से उपर्युक्त 43 ध्रुवबंधी अशुभ प्रकृतियों का जघन्य अनुभागबंध होता है।

सर्वार्थसिद्धि अध्याय 6 सूत्र 3 की टीका में भी कहा गया है – जो योग शुभ परिणामों के निमित्त से होता है वह शुभ योग है और जो योग अशुभ परिणामों के निमित्त से होता है वह अशुभ योग है। शायद कोई यह माने कि शुभ और अशुभ कर्म का कारण होने से शुभ और अशुभ योग होता है सो बात नहीं है यदि इसप्रकार इनका लक्षण कहा जाता है तो शुभ योग ही नहीं हो सकता, क्योंकि शुभ योग को भी ज्ञानावरणादि कर्मों के बंध का कारण माना है।

उत्कृष्ट अनुभाग बंध के स्वामी –

पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, असातावेदनीय, मिथ्यात्व, 16 कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुंवेद ये 5 नोकषाय, हुण्डक संस्थान, अप्रशस्त स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र और पाँच अंतराय, इन प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी पञ्चेन्द्रिय संज्ञी मिथ्यादृष्टि सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त साकार जागृत नियम से उत्कृष्ट संक्लेश युक्त और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर 4 गति का जीव है। साता वेदनीय, यशःकीर्ति और उच्च गोत्र के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी, क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय संयत और अंतिम समय में उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाले अन्यतर जीव है। स्त्रीवेद, पुंवेद, हास्य, रति, न्यग्रोध-परिमण्डलादि चार संस्थान, वज्रनाराचादि चार संहनन का बंध मतिज्ञानावरण के समान है। किन्तु विशेषता इतनी है कि यह तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम वाले जीव के कहना चाहिए। नरकायु, तीन जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण के उत्कृष्ट अनुभाग का स्वामी सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्त हुआ साकार जागृत तत्प्रायोग्य संक्लेश परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग

बंध करने वाला अन्यतर मनुष्य या संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच जीव है। तिर्यंच व मनुष्यायु के सबंध में भी यही कथन है। किन्तु विशेषता इतनी हैं कि यहाँ तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला जीव कहना चाहिए। देवायु के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी साकार जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर अप्रमत्त संयत जीव है। नरकगति व नरकगत्यानुपूर्वी का उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध को करने वाला अन्यतर मनुष्य या पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच जीव है। मिथ्यादृष्टि साकार जागृत नियम से उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर देव और नारकी, तिर्यंच गति असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन और तिर्यग्गत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी है। सम्यग्दृष्टि साकार जागृत, सर्वविशुद्ध और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर देव और नारकी जीव मुनष्य गति, औदरिकशरीर, औदारिक आंगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगत्यानुपूर्वी के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी है। देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक आंगोपांग, आहारक आंगोपांग, प्रशस्त स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, परघात, उच्छवास, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, शुभ, सुस्वर, सुभग, आदेय, निर्माण व तीर्थंकर के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी अन्यतर क्षपक अपूर्वकरण जो परभव सम्बन्धी नामकर्म की प्रकृतियों का अंतिम समय में उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला है वह जीव है। एकेन्द्रिय जाति और स्थावर के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी मिथ्यादृष्टि, साकार-जागृत, नियम से उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर सौधर्म और ईशान कल्प का देव है। आतप प्रकृति के उत्कृष्ट अनुभागबंध का स्वामी संज्ञी, साकार, जागृत तत्प्रायोग्य विशुद्ध परिणाम वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर तीन गति का जीव है। उद्योत प्रकृति के उत्कृष्ट अनुभाग बंध का स्वामी मिथ्यादृष्टि

सर्वपर्याप्तियों से पर्याप्त, साकार जागृत सर्वविशुद्ध, तदनंतर समय में सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाला और उत्कृष्ट अनुभाग बंध करने वाला अन्यतर सप्तम पृथ्वी का नारकी जीव है।

जघन्य अनुभाग बंध के स्वामी :

अशुभ वर्णादि चार, उपघात, ज्ञानावरण पाँच, अन्तराय पाँच, दर्शनावरण चार, निद्रा, प्रचला, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद तथा संज्वलन चार इन तीस प्रकृतियों की जहाँ-जहाँ बन्ध व्युच्छित्ति होती है। वहाँ-वहाँ क्षपक श्रेणी वाले के जघन्य अनुभाग बन्ध होता है। अनन्तानुबन्धी चार, स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राएँ और मिथ्यात्व, इन आठ प्रकृतियों का मिथ्यात्व गुणस्थान में, अप्रत्याख्यान की चार कषाय असंयत गुणस्थान में, प्रत्याख्यान की चार कषाय देश संयत गुणस्थान में इस प्रकार इन गुणस्थानों में ये 16 प्रकृतियाँ संयम गुण को धारण करने के सम्मुख हुआ अर्थात् तदन्तर समय में संयम को प्राप्त करेगा ऐसा विशुद्ध परिणामी जघन्य अनुभाग सहित बांधता है। आहारक शरीर व आहारक आंगोपांग इन दो शभु प्रकृतियों को प्रमत्त गुणस्थान के सम्मुख हुआ संक्लेश परिणाम वाला अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव जघन्य अनुभाग सहित बांधता है। अरति और शोक को तत्प्रायोग्य विशुद्ध प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीव जघन्य अनुभाग सहित बांधता है। सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, देवद्विक, नरकद्विक, वैक्रियिकद्विक, देवायु व नरकायु का जघन्य अनुभाग सहित बन्ध मनुष्य व तिर्यंच करता है। तिर्यंच व मनुष्यायु का लब्ध्यपर्याप्तक जीव करता है। उद्योत और औदारिक द्विक का जघन्य अनुभाग बंध संक्लिष्ट परिणामी देव और नारकी के होता है। सप्तम नरक में सम्यक्त्व के अभिमुख विशुद्ध नारकी के तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का जघन्य अनुभाग बंध होता हैं। स्थावर व एकेन्द्रिय का जघन्य अनुभाग बन्ध नरकगति बिना शेष तीनगति वाले मध्यम परिणामी जीव करते हैं। आतप प्रकृति का जघन्य अनुभाग बन्ध भवनत्रिक और सौधर्म युगल वाले संक्लेशपरिणामी देवों के होता है। तीर्थंकर प्रकृति का द्वितीय या

एवं प्रत्ययवशादुपात्तरसविशेषो द्विधा वर्तते। स्वमुखेन परमुखेन च सर्वासां मूलप्रकृतिनां स्वमुखेनानुभवः। उत्तर प्रकृतीनां तुल्यजातीनां परमुखेनापि भवति। आयुर्दर्शनचारित्रवर्जनां न हि नरकायुर्मनुष्यायुर्देवायुर्तिर्यगायुर्वा पच्यते नापि दर्शनमोहश्चारित्रमोहमुखेन चारित्रमोहो वा दर्शनमोहमुखेनेति।

तृतीय नरक जाने वाले मिथ्यात्व के सम्मुख असंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्य के जघन्य अनुभाग सहित बंधती है। परघात, उच्छ्वास, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभरूप वर्ण चतुष्क, निर्माण, पञ्चेन्द्रिय, अगुरुलघु, इन पंद्रह प्रशस्त प्रकृतियों का चारों गति के संक्लिष्ट जीवों के तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन दो अप्रशस्त प्रकृतियों का चारों गति के विशुद्ध परिणामी जीव जघन्य अनुभाग बंध करते हैं। स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, सातावेदनीय व असातावेदनीय इन आठ प्रकृतियों का परिवर्तमान अथवा अपरिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के या सम्यग्दृष्टि जीव के उच्च गोत्र, 6 संस्थान, 6 संहनन, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, सुभग, दुर्भग, आदेय, अनादेय ये 23 प्रकृतियाँ परिवर्तमान मध्यम परिणामी मिथ्यादृष्टि जीव के जघन्य अनुभाग सहित बंधती हैं।

(जो परिणाम संक्लेश अथवा विशुद्धि से प्रति समय बढ़ने ही जावे या घटते ही जावें पुनः पूर्वावस्था को प्राप्त न हो उन्हें अपरिवर्तमान परिणाम कहते हैं तथा जो परिणाम एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होकर पुनः पूर्व अवस्था को प्राप्त हो सकें वे परिवर्तमान परिणाम हैं।)

इस प्रकार कारण वश से प्राप्त हुआ वह अनुभाग दो प्रकार से प्रवृत्त होता है - स्वमुख और परमुख से। सब मूल प्रकृतियों का अनुभाग स्वमुख से प्रवृत्त होता है। आयु, दर्शनमोहनीय और चारित्र मोहनीय के सिवाय तुल्यजातीय उत्तरप्रकृतियों का अनुभाग परमुख से भी प्रवृत्त होता है। नरकायु के स्वमुख से तिर्यंच आयु या मनुष्य आयु का विपाक नहीं होता, दर्शनमोह चारित्रमोह रूप से और चारित्र मोह दर्शनमोह रूप से

तथा देशघातिसर्वघातिभेदेनानुभागो द्विप्रकारो भवति। देशं स्तोकं गुणं घातयतीति देशघाती। सर्वगुणं घातयतीति सर्वघाती।

केवलज्ञानावरणकेवलदर्शनावरणनिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धि-निद्राप्रचलानंतनुबंध्यादिद्वादशकषायमिथ्यात्वविंशतिप्रकृतीनामनुभागः सर्वघाती ज्ञानादि-गुणान् सर्वान् घातयतीति दावानल इव।

विपाक को नहीं प्राप्त होता।

देशघाति और सर्वघाति के भेद से अनुभाग बंध दो प्रकार का होता है। जो देश-स्तोक गुणों को घातती है अर्थात् जीव गुणों का पूर्णरूप से घात नहीं करती, वह देशघाती है तथा जो सम्पूर्ण गुण को घातती है, वह सर्वघाती है।

केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि, निद्रा, प्रचला, अनंतानुबंधी आदि 12 कषाय एवं मिथ्यात्व इन बीस प्रकृतियों का अनुभाग दावानल अग्नि के समान जीव के ज्ञानादि गुणों का पूर्ण रूप से घात करती हैं अतः ये सर्वघाति प्रकृतियाँ हैं।

विशेषार्थ- केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ ये 12 कषायें और मिथ्यात्व ये 20 प्रकृतियाँ बंध की अपेक्षा सर्वघाती हैं तथा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति किंचित् सर्वघाति तो है, किन्तु बन्ध योग्य नहीं है, उदय और सत्व में जात्यंतररूप से सर्वघाति है अतः उदय और सत्व की अपेक्षा 21 प्रकृतियाँ सर्वघाति हैं। ये प्रकृतियाँ सर्वघाति इसलिए हैं क्योंकि ये जीव के गुणों का पूर्णरूप से घात करती हैं। जैसे केवलज्ञानावरण का उदय 12 वें गुणस्थान तक रहता है। तो 12 वें गुणस्थान तक केवलज्ञान का अंश भी प्रकट नहीं होता है। उसका पूर्ण रूप से आवरण रहता है। इसी प्रकार केवल दर्शनावरणादि सभी सर्वघाति प्रकृतियों के विषय में समझना चाहिए।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरण-पंचांतरायचतुः संज्वलननवनोकषायाणाम् उत्कृष्टानुभागबंधः स सर्वघाततोऽशेषः सर्वघाती वा देशघाती वा जघन्यो देशघाती।

मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानावरण, चक्षु-अचक्षु-अवधि-दर्शनावरण, पञ्च अंतराय, संज्वलन चतुष्क और नव नोकषाय इन 25 प्रकृतियों का जो उत्कृष्ट अनुभागबंध है, वह सर्वघाती है। इससे शेष (मध्यम) अनुभाग बंध सर्वघाती अथवा देशघाती रूप है तथा जघन्य अनुभाग देशघाती रूप है।

विशेषार्थ- मति आदि चार ज्ञानावरण, चक्षु आदि तीन दर्शनावरण, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद, दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यांतराय ये 25 प्रकृतियाँ बंध की अपेक्षा देशघाती हैं तथा उदय और सत्त्व की अपेक्षा सम्यक्त्व प्रकृति सहित 26 प्रकृतियाँ देशघाती हैं। ये 26 प्रकृतियाँ जीवगुणों का पूर्ण रूप से घात नहीं करतीं अतः देशघाती हैं यथा 12 वें गुणस्थान तक मतिज्ञानावरणादि कर्म का उदय होते हुए भी मतिज्ञानादि आंशिक प्रकट रहते हैं।

घातिया कर्मों की शक्ति (स्पर्धक) लता , दारु, अस्थि और शैल की उपमा के समान चार प्रकार की है। जिस प्रकार लता आदि में क्रम से अधिक-अधिक कठोरता पाई जाती है। उसी प्रकार इन कर्मस्पर्धकों अर्थात् कर्मवर्गणा के समूहों में अपने फल देने की अनुभाग रूप शक्ति क्रम से अधिक-अधिक पायी जाती है।

लता भाग से दारुभाग के अनंतवें भाग पर्यंत स्पर्धक देशघाति हैं, इनके उदय होने पर भी आत्मा के गुण एक देश रूप से प्रकट रहते हैं तथा दारुभाग के अनंत भागों में से एक भाग बिना शेष बहुभाग से शैल भाग पर्यंत जो स्पर्धक हैं। वे सर्वघाति हैं, क्योंकि इनके उदय रहने पर आत्म गुणों का एक अंश भी प्रकट नहीं होता अथवा पूर्ण गुण प्रकट नहीं होते।

जैसे जहां अवधिज्ञान का अंश भी प्रकट न हो वहाँ अवधि-ज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय जानना चाहिए तथा जहाँ पर अवधिज्ञान और अवधिज्ञानावरण भी पाया जाता है वहाँ अवधिज्ञानावरण के देशघाति स्पर्धकों का उदय जानना। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों में भी कथन समझना चाहिए। मति आदि चार ज्ञानावरण, चक्षु आदि तीन दर्शनावरण, अन्तराय पाँच, संज्वलन चार और एक पुरुषवेद ये 17 प्रकृतियाँ शैल, अस्थि, दारु और लता इन चार भाव रूप परिणत होती हैं। जहाँ, शैल भाग नहीं होता वहाँ अस्थि, दारु, लता रूप परिणत होती हैं। तथा जहाँ अस्थि, भाग भी नहीं है वहाँ दारु और लता रूप प्रवर्तित होती हैं एवं जहाँ दारु भाग भी नहीं है वहाँ केवल लता रूप ही परिणत होती हैं तथा इन 17 प्रकृतियों के बिना अवशेष प्रकृतियों में से सम्यक्त्व और मिश्र प्रकृति बिना घातिया कर्म की समस्त प्रकृतियों के तीन प्रकार के भाव जानना। केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, 5 निद्रा और अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया-लोभ रूप इन 12 कषायों के सर्वघाती स्पर्धक ही हैं, देशघाति नहीं हैं, अतः इनके स्पर्धक शैल, अस्थि और दारु के अनंतबहुभाग रूप हैं तथा शैल के बिना 2 प्रकार एवं अस्थि के बिना एक प्रकार भी पाए जाते हैं। इसलिए तीनों प्रकार के भाव रूप हैं। पुरुष वेद के बिना आठ नो कषाय शैल, अस्थि, दारु और लता रूप चारों प्रकार के अनुभाग से सहित हैं। इनमें से शैल, अस्थि, दारु व लता तथा अस्थि दारु व लता रूप अथवा दारु व लतारूप से तीन प्रकार परिणत होती हैं। केवल लता रूप से कदाचित भी परिणत नहीं होती है। दर्शनमोहनीय कर्म के लता भाग से दारु भाग के एक भाग के अनंत भागों में से एक भाग पर्यंत देशघाति के सभी स्पर्धक सम्यक्त्व प्रकृति रूप हैं तथा दारु भाग के एक भाग बिना शेष बहुभाग के अनंतखण्ड करके उनमें से अधस्तन एक खण्ड प्रमाण भिन्न जाति के सर्वघाति स्पर्धक मिश्र प्रकृति रूप जानना तथा शेष दारु भाग के बहुभाग में एक भाग बिना बहुभाग से अस्थि भाग-शैलभाग

सातासातावेदनीयचतुरायुः समस्तनामप्रकृतिः उच्चैर्नीचैर्गौत्राणा-मुत्कृष्टाद्यनुभागबंधः घातिनां प्रतिभागः। घातिविनाशे स्वकार्यकरण सामर्थ्याभावात्। एता अघातिप्रकृतयः पुण्यपापसंज्ञाः शेषाः पूर्वोक्ताः पुनः पापाख्या भवंतीति।

अशुभप्रकृतीनां चत्वारिस्थानानि निंबकांजीरविषकालकूट - समानानि। शुभप्रकृतीनां चत्वारिस्थानानि गुड़खांडशर्करामृततुल्यानि।

पर्यंत जो स्पर्धक हैं। वे सर्वघाति मिथ्यात्व रूप जानना।

साता वेदनीय, असाता वेदनीय, चार आयु, नामकर्म की सभी प्रकृतियाँ, उच्च-नीत्र गोत्र घातिया कर्मों का प्रतिभाग है, क्योंकि घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने पर ये साता वेदनीय आदि अघातिया कर्म अपने कार्य करने में समर्थ्य नहीं होते हैं। सातावेदनीय आदि 101 अघातिया प्रकृतियाँ पुण्य-पाप रूप होती हैं। शेष पूर्वोक्त 47 घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ पाप रूप ही होती हैं।

विशेषार्थ- सर्वघाती और देशघाती के सिवाय अवशिष्ट वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म की 101 प्रकृतियाँ अघातिया जानना चाहिए। वे स्वयं तो आत्मगुणों के घातने में असमर्थ हैं, किन्तु घातिया प्रकृतियों की प्रतिभागी हैं अर्थात् उनके सहयोग से आत्मगुणों को घातने में समर्थ होती हैं। इन 101 अघातिया प्रकृतियों में ही पुण्य और पाप रूप विभाग है। शेष चार घातिया कर्मों की 47 प्रकृतियों को तो पापरूप ही जानना चाहिए।

अशुभ प्रकृतियों के चार स्थान-निंब, कांजीर, विष और कालकूट (हलाहल) के समान हैं और शुभ प्रकृतियों के चार स्थान-गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान हैं।

विशेषार्थ- अप्रशस्त प्रकृतियों के प्रतिभाग निंब, कांजीर, विष और कालकूट के समान हैं। जिस प्रकार निम्ब, कांजीर, विष और कालकूट एक दूसरे की अपेक्षा अधिक-अधिक कटु हैं। उसी प्रकार

पंचशरीरपंचशरीरसंघातपंचशरीरबंधनानि त्रिआंगोपांगषट्-संस्थानषट्-संहननपंचवर्णद्विगंधपंचरसाष्टस्पर्शा - गुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतनिर्माण-प्रत्येकसाधारणस्थिरास्थिराशुभशुभाः एताः प्रकृतयः पुद्गलविपाकाः पुद्गल-परिणामिन्यो यत इति।

चत्वार्यायूंषि भवविपाकानि भवधारणत्वात्।

निम्बभाग, कांजीरभाग, विषभाग और कालकूटभाग रूप अप्रशस्त प्रकृतियों के स्पर्धक दुःख के कारण हैं। अशुभ प्रकृतियाँ निम्ब, कांजीर, विष और कालकूट या निम्ब कांजीर विष अथवा निम्ब, कांजीर इन तीन भाव रूप परिणत होती हैं। शुभ प्रकृतियों के प्रतिभाग अर्थात् शक्ति के भेद गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत के समान हैं। जैसे गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत एक दूसरे से अधिक-अधिक सुख के कारण अर्थात् मिष्ट हैं उसी प्रकार गुड़ भाग, खाण्ड भाग, शर्कराभाग और अमृत भाग रूप प्रशस्त प्रकृति के स्पर्धक अधिक-अधिक सांसारिक सुख के कारण हैं। प्रशस्त प्रकृतियाँ गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृत या गुड़, खाण्ड, शर्करा अथवा गुड़ व खाण्ड इन तीन भाव रूप परिणत होती हैं।

पाँच शरीर, पाँच शरीरसंघात, पाँच शरीरबंधन, तीन आंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, निर्माण, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ ये 62 प्रकृतियाँ पुद्गल विपाकी हैं क्योंकि पुद्गल में ही इनका फल होता है।

भव धारण में कारण होने से चारों आयु भव विपाकी हैं। अर्थात् नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु ये चारों आयु भव विपाकी प्रकृतियाँ हैं।

चतुरानुपूर्वाणि क्षेत्रविपाकानि क्षेत्रमाश्रित्यफलदानात्।

शेषा तु प्रकृतयो जीवविपाकाः जीवपरिणामनिमित्तत्वात्।

क्षेत्र के आश्रय से अर्थात् विग्रहगति में फल देने के कारण चारों आनुपूर्वी क्षेत्र विपाकी हैं। अर्थात् नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी ये चारों आनुपूर्वी क्षेत्र विपाकी प्रकृतियाँ हैं।

शेष प्रकृतियाँ जीव के परिणामों में निमित्त होने से जीव विपाकी हैं।

विशेषार्थ- जिन प्रकृतियों का विपाक जीव में होता है अर्थात् जो प्रकृतियाँ जीव के परिणामों के आश्रित होती हैं उन्हें जीव विपाकी कहते हैं। जीव विपाकी प्रकृतियाँ 78 होती हैं। जो इस प्रकार हैं- पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, 28 मोहनीय, चार गति, पाँच जाति, उच्छ्वास, प्रशस्ताप्रशस्त-विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, तीर्थङ्कर दो गोत्र और पाँच अंतराय।

प्रदेशबंधः

वीरं जगत्त्रयाधीशं, प्रदेशबंधनाशिनं।
नत्वा वक्ष्ये प्रदेशाख्यं, बंधं तद्-बंधहानये॥

यत्र आकाशप्रदेशो कर्मादानतत्पर आत्मा तिष्ठति तत्रैव क्षेत्रे अनंतानंताः सूक्ष्मज्ञानावरणादिकर्मबंधयोग्याः पुद्गलपरमाणवः अवतिष्ठंति तेऽनंतानंतपरमाणवः मनोवाक्कायव्यापारविशेषात् सर्वेष्वात्मप्रदेशेषु ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्षु यत् परस्परं संश्लेषरूपेण समयं समयं प्रति संबंधं याति स प्रदेशबंधः। शुभाशुभयोगेन प्रकृतिप्रदेशबंधौ प्राणी बध्नाति। कषायेण स्थित्यनुभागबंधौ जीवो बध्नाति।

कर्मों के प्रदेश बंध को नष्ट करने वाले, तीनों लोकों के स्वामी वीरजिन को नमस्कार करके मैं अपने प्रदेश बंध को नष्ट करने के लिए प्रदेश बंध का निरूपण करता हूँ।

जिन आकाश प्रदेशों में कर्म को ग्रहण करने में तत्पर जीव रहता है। उस ही क्षेत्र में ज्ञानावरणादि कर्म बंध के योग्य अनंतानंत सूक्ष्म पुद्गल परमाणु रहते हैं। वे अनंतानंत परमाणु मन, वचन एवं काय के व्यापार विशेष से ऊपर नीचे और तिरछे सम्पूर्ण आत्म प्रदेशों से प्रति समय सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, उसे प्रदेश बंध कहते हैं। जीव शुभ अशुभ योग से प्रकृति और प्रदेश बंध करता है तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध करता है।

विशेषार्थ- एक क्षेत्र में स्थित सूक्ष्म ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन के योग्य ऊपर, नीचे और तिरछे सब आत्म प्रदेशों में व्याप्त पुद्गल मन-वचन और काय के व्यापार विशेष के कारण प्रति समय जीव से सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं, उसे प्रदेश बंध कहते हैं।

कर्म योग्य पुद्गल परमाणु, कहीं बाहर से नहीं आते अपितु जीव के ग्रहीत शरीर में व्याप्त आकाश प्रदेशों में रहते हैं और वे ही कर्मरूप परिणमन कर जाते हैं।

कायोत्सर्गदृढासन - निर्विकारसाम्य - गुरुसेवादि शुभकायेन। सत्यहितमितभाषणधर्मोपदेशनपंचनमस्कारजपनजिनेन्द्रगुर्वादिस्तवनकरण-सिद्धांतपठनादिशुभवचनेन। तत्त्वावलंबनप्रशस्तध्यानकरण-जिनेंद्रादि-गुणस्मरणसंसारदेहभोग वैराग्यभावना-मोक्षोपाय-चिंतनादि-शुभमनसा च शुभ-प्रकृतिप्रदेशबंधौ देही स्वीकुरुते।

प्राणिघातवध-बंधनानायतनगमनस्वेच्छाचरणविकारकारणाद्य-शुभकायेन। अनृतपरुषकटु-कर्मादि-भाषणपरनिंदन मिथ्योपदेशनधर्म-विरुद्धजल्पनविकथा-करणाद्यशुभवचनेन परस्त्रीधनादानचिंतन-विषय सुख-सौंदर्यस्मरण-कुशास्त्रादिधारणा-मिथ्या-देवप्रशंसाद्यशुभचिंतनेन च संसारी अशुभ-प्रकृतिप्रदेशबंधौ बध्नाति।

ज्ञानं ज्ञानिजन - दोषभाषण - पैशून्यपरिणाम-विद्यागर्वज्ञान गुर्वादिनिह्नव-पठनादि-विघ्नकरणज्ञानविनय-प्रकाशनगुणकीर्तिनाद्य-

शुभ काय से अर्थात् कायोत्सर्ग-दृढ़ासन-निर्विकार-सौम्य मुद्रा वाले गुरु आदि की सेवा, सत्य, हित, मित, प्रियभाषण, धर्मोपदेश, पञ्च नमस्कारजाप, जिनेन्द्र गुरु आदि का स्तवन (स्तुति) करना, सिद्धान्त शास्त्रों का पढ़ना आदि शुभ वचन से तथा तत्त्व का अवलंबन, प्रशस्त ध्यान, जिनेन्द्रादि पञ्चपरमेष्ठियों के गुणों का स्मरण, संसार, शरीर भोगों से वैराग्य की भावना, मोक्ष के उपाय का चिंतनादि शुभ परिणामों से जीव शुभ प्रकृति और प्रदेश बंध को करता है।

प्राणीघात, वधबंधन, अनायतनगमन, स्वेक्षाचरण, विकार उत्पन्न करने वाली अशुभ काय, असत्य परुष, कटुक आदि रूप वचन, दूसरों की निन्दा, झूठा उपदेश, धर्म विरुद्ध बोलना, विकथा करना आदि अशुभ वचन से परस्त्री एवं परधन ग्रहण चिन्तन विषय सुख एवं सौन्दर्य स्मरण कुशास्त्र आदि धारण मिथ्यादेव प्रशंसा आदि अशुभ परिणामों से जीव अशुभ प्रकृति और प्रदेश बंध करता है।

ज्ञान और ज्ञानी जनों के विषय में दोष युक्त बोलना, ईर्ष्याभाव, विद्या का गर्व, विद्यागुरु आदि का नाम छिपाना, पढ़ने आदि में विघ्न

नुष्ठानपठन-योग्यापाठनाचार्योपाध्यायसाधु प्रत्यनीकत्वाकालाध्ययन कूटपठनश्रद्धाभावालस्यानादरश्रवणतीर्थोपरोधबहुश्रुत-मात्सर्य-कुज्ञान-भावन-बहु श्रुतावमाना-नैकांतमतत्यजनैकांतमतस्थापन-सिद्धान्त विरुद्ध-स्वेच्छाजल्प-नोत्सूत्रभाषण-मिथ्योपदेश-शास्त्रविक्रय-विकथा करण-मौनरहितभोजन-मलोत्सर्ग-मैथुनादिसेवन-प्राणातिपात-मृषावाद परनिंदादयो ज्ञानावरणास्रवस्य हेतवो विज्ञेयाः।

नेत्रोत्पाटनपरस्त्री-मुखयोनि-शृंगारादिदर्शन-कुतीर्थ-मिथ्यात्व स्थापन-पापकार्याद्यवलोकनेन्द्रिय-विकारकरण-धर्मिजनप्रभावासहन दर्शन-मात्सर्यांतराय-जिनधर्मप्रत्यनीकत्व-जिनधर्ममहोत्सवजिनचैत्य-चैत्यालय निर्ग्रंथानवलोकन-दृष्टिगौरव-दिवाशयनबहुनिद्रालस्यनास्ति-कांगीकार सम्यग्दृष्टिज्ञानिज्ञान-तपस्विसंदूषणकुतीर्थ-मिथ्यादृष्टि-

---

करना ज्ञान विषय प्रकाशन में अनादर गुण कीर्तिनादि कार्य में अनादर पठन योग्य शास्त्र को नहीं पढ़ना, आचार्य और उपाध्याय के प्रतिकूल चलना, अकाल अध्ययन, मिथ्याशास्त्र पढ़ना, अश्रद्धा, अभ्यास में आलस्य, अनादर से अर्थ सुनना, तीर्थोपरोध अर्थात् दिव्यध्वनि के समय स्वयं व्याख्या करने लगना, बहुश्रुतपने का गर्व, खोटे ज्ञान की भावना, बहुश्रुत का अपमान, अनेकान्त मत को छोड़कर एकान्त मत की स्थापना, अपनी इच्छानुसार सिद्धान्त विरुद्ध बोलना, सूत्र विरुद्ध बोलना, मिथ्योपदेश, शास्त्र बेचना, विकथा करना, मौन रहित भोजन करना, अध्ययन करते समय शरीर से मल (नासिका, कर्ण, नेत्र इत्यादि से) निकालना, मैथुन सेवन, हिंसादि कार्य करना, झूठ बोलना, दूसरों की निन्दा करना ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

आँखें फोड़ना, परस्त्री का मुख, योनि, शृंगारादि देखना, कुतीर्थ एवं मिथ्यात्व मत की स्थापना, पाप आदि कार्य करना, चक्षु इन्द्रिय में विकार करना, धर्मीजनों के प्रभाव को सहन नहीं कर पाना, दर्शनमात्सर्य, दर्शनअंतराय, जिन धर्म के विपरीत चलना, जिनधर्म के महोत्सव, जिन चैत्य चैत्यालय और निर्ग्रन्थ साधुओं को नहीं देखना, दृष्टि का गर्व, दिन

प्रशंसा-यति-जन-जुगुप्सा-हिंसानृत-पर-धनहरणादयो दर्शनावरण कर्मणां हेतवो भवंति।

दुःख - शोकरोदनाक्रंदन - संताप - परिभवविषाद-तीव्रखेद-संक्लेश-वध-बंधनांगोपांगछेदनभेदन-ताडन-त्रासन-तर्जनोच्चाटन-निरोधन-मर्दन-दमन-निर्भत्सनहिंसन-निष्ठुरत्व-निर्दयत्वाशुभोपयोग-परपरिवाद-पैशून्य-कटुकालाप-मृषावाद-परद्रव्यापहार-परनिंदात्म प्रशंसा-संक्लेशोत्पादन महारंभप्रर्वतन-बहुपरिग्रहसंग्रहयोगवक्रता निःशीलत्व पापकर्मप्रवीणत्वानर्थदंडकरणविषमिश्रणशरजालपाश पंजर यंत्रायुधाग्नि - याष्टिकादान - परस्त्री - विषयलंपटत्वनिशाभोजना-खद्यभक्षण - मनो वाक्काय - कौटिल्यान्नपाननिरोध - कृपणत्व-स्वेच्छाचरणा-दीन् यः स्वयं करोति चान्येषां कारयति स्वान्योश्चो-

---

में सोना, बहुत निद्रा लेना, अति आलस्य करना, नास्तिकता को धारण करना, सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा में, ज्ञानी के ज्ञान में, तपस्वी के चारित्र में दूषण लगाना, कुतीर्थ एवं मिथ्यादृष्टि प्रशंसा, यति जनों के प्रति ग्लानि भाव, हिंसा करना, झूठ बोलना, दूसरों के धन का हरण करना इत्यादि दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण हैं।

दुःख, शोक, रोदन, आक्रंदन, संताप, परिभव, विषाद, अतिखेद, संक्लेश, वध, बंधन-आंगोपांग-छेदन-भेदन-ताडन-त्रासन-तर्जन-उच्चाटन-निरोधन-मर्दन-दमन-भर्त्सन-हिंसन-निष्ठुरता, निर्दयता, अशुभोपयोग, परपरिवाद, पैशून्य, कठोर बोलना, झूठबोलना, दूसरों के द्रव्य का हरण, दूसरों की निंदा, अपनी प्रशंसा, संक्लेश को उत्पन्न करने वाले महारंभ में प्रवृत्ति, बहु परिग्रह का संग्रह, योगों की वक्रता, शीलरहित, पापकर्म में प्रवीणता, अनर्थदण्ड करना, विष मिलाना, बाण, जाल, पाश, पिंजरा, यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, लाठी आदि दूसरों को देना, परस्त्री विषय लंपटत्व, रात्रि भोजन, अभक्ष्य भक्षण, मन वचन काय की कुटिलता, अन्नपान निरोध, कृपणत्व, स्वेच्छाचरण (अपनी इच्छानुसार कुछ भी

त्पादयति तस्यासाता-वेदनीय-कर्मास्रव-निमित्तास्त दुःखादयो भवंति।

सर्वसत्त्वमैत्री-गुणिप्रमोद-क्लिष्टांगि-कृपापात्रदान परोपकार-क्षमा-मार्दव-निर्लोभत्वसरागसंयम-संयमासंयम तपोजिन-स्मरण-निर्ग्रंथगुरु-सेवार्हद्-भक्ति-जिनधर्मप्रभावना धर्मिजनस्नेह-वात्सल्य-ध्यानाध्ययनपंच-नमस्कारजपन-जिनपूजन-शुभाशय-वैयावृत्त्यकरण-धर्मोपदेशजितेन्द्रित्व-जिनचैत्यालय-विंवसिद्धान्तोद्धारकरण-विनयादयः साता-वेदनीयकर्मणामाश्रवहेतवो ज्ञातव्याः।

केवलिजिन-सिद्धान्त-देवमुनि-श्रावक-जिनशासन-जिनधर्म-सम्यग्दृष्टि - तपस्विधर्मिजनावर्णवाद - कुतीर्थनमन सुतीर्थोल्लंघन मिथ्यादृष्टि-कुज्ञान-कुतपः प्रशंसा जिनवचन शंकालोकाचार-धर्माचरणमूढत्व-मिथ्यादृष्टि माननमस्कार पूजाकरण-जिनमुनिगुण कीर्तननमस्काराकरणस्नान-तर्पण-श्राद्धादिकरण-मिथ्यात्वपोषण-

---

करना) उपर्युक्त कारणों को जो स्वयं करता, दूसरों से करवाता, अपने या दूसरों के लिए साधन उपलब्ध कराता है। उसके ये कर्म असातावेदनीय कर्म के आस्रव के कारण हैं और ये आस्रव दुःख रूप होते हैं।

संसार के सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव, गुणी जनों के प्रति प्रमोद, दुःखी जनों के प्रति कृपाभाव, दान, परोपकार, क्षमा, मार्दव, निर्लोभत्व, सरागसंयम, संयमासंयम, ऋद्धिधारी साधुओं का स्मरण, निर्ग्रंथ गुरु की सेवा, अर्हंत भक्ति, जिनधर्म प्रभावना, धर्मिजनों के प्रति स्नेह, वात्सल्य, ध्यान, अध्ययन, पञ्च नमस्कार मंत्र का जाप, जिनपूजा, प्रशस्त अभिप्राय, वैयावृत्ति, धर्मोपदेश, जितेन्द्रियत्व, जिन चैत्यालय, जिन बिम्ब एवं जिन सिद्धान्त का उद्धार करना तथा विनयादि करना साता वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

केवली जिन, सिद्धान्त, देव, मुनि, श्रावक, जिनशासन, जिनधर्म, सम्यग्दृष्टि, तपस्वी एवं धर्मीजनों का अवर्णवाद, कुतीर्थनमन, सुतीर्थ उल्लघंन, मिथ्यादृष्टि-कुज्ञान-कुतपप्रशंसा, जिनवचन में शंका, लोकाचार, एवं धर्माचरण में मूढ़ता, मिथ्यादृष्टियों का सम्मान, नमस्कार, पूजन,

तत्त्वश्रद्धाभावादयो दर्शनमोहास्रवस्य निमित्ताः भवन्ति।

स्वपरतीव्र-कषायोत्पादनव्रतादियुक्तगर्हणरौद्रपरिणाम बहुलोभा-भिमान-निकृति-धर्मध्वंसननिःशीलत्वगुणितपस्वि-मात्सर्य-कषायिजन-संगतियमनियमव्रतक्षमाद्यभावादयः कषायवेदनीयास्रवकारणा विज्ञेयाः।

धर्मिजनदीनोपहासादिहासकंदर्पहासबहुप्रलापाश्चर्योत्पादन-लज्जाभावादयो हास्यहेतवः स्युः। विचित्रक्रीडन-शृंगारादि-दर्शनौत्सक्य-बहुविध-पीडाभाव-प्रीतिकर-वाक्यादयो रति-कर्मणो हेतवो मंतव्याः। पररतिविनाश-पापशीलसंसर्ग निंद्यक्रियाप्रोत्साहोद्वेगादिररतिवेदनीयस्य हेतुः स्यात्। स्वान्य-शोकोत्पादन-परवस्त्वाद्यादानशोकविह्वलाभिनंद-नादयः शोक-कर्मास्रव-हेतवः स्युः। स्वभयत्रस्तपरिणाम-परभयकरण

मुनि गुण अप्रशंसा-अनमन, नदी अदि में स्नान, दिवंगत पूर्वजों के प्रति जल तर्पण, श्राद्ध आदि करना, मिथ्यात्व पोषण, तत्त्वश्रद्धा अभाव आदि दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव के कारण होते हैं।

स्वयं तीव्र कषाय करना, दूसरों में तीव्र कषाय उत्पन्न करना, व्रती निंदा, रौद्र परिणाम, बहुत लोभ, बहुत अभिमान, दुष्टता, धर्म नाश, निःशीलत्व, गुणी तपस्वी जनों के प्रति मात्सर्य भाव, कषायी लोगों की संगति, यम, नियम, व्रत एवं क्षमादिभाव का अभाव ये सब कषाय वेदनीय कर्म के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

धर्मीजनों की दीनता पूर्वक हंसी, बहुत हंसी मजाक, कामविकार पूर्वक हंसी, बहुप्रलाप, आश्चर्य उत्पादन, लज्जा अभाव आदि हास्य वेदनीय के आस्रव के कारण हैं। विचित्र क्रीड़ा, शृंगारादि देखने में उत्सुक्ता, दूसरों को अनेक प्रकार के दुःख देने के भाव होना, प्रीति कर वाक्यादि रति कर्म के आस्रव के कारण हैं। दूसरों की रति का विनाश, पाप शील व्यक्तियों की संगति, निंद्य क्रिया को प्रोत्साहन देना एवं उद्वेगादि अरति वेदनीय के आस्रव के कारण हैं। स्व शोक, दूसरों में शोक उत्पादन, दूसरों की वस्तु आदि का ग्रहण, शोक से विह्वल पुरुषों का अभिनंदन

त्रासन-तर्जन-निर्दयत्वादिर्भयवेदनीयास्रवस्य निमित्तो भवति। कुशल-क्रियासहन-मललिप्तगात्रमुनिजुगुप्सापरपरिवादादयो जुगुप्सा वेदनीया-स्रवस्य निमित्ता विज्ञेयाः। प्रकृष्टक्रोधमायाबहुवंचने अलीकभाषण-प्रवृद्धरागकाम-भोगासंतोष-मूढत्वस्त्रीवेशधारित्वादयः स्त्रीवेदास्रव-कारणाः स्युः। मंद क्रोधार्जवानुत्सिक्तत्वा-वाल्यरागस्वदारसंतोषदान पूजन-भोगवस्त्वनादर कूटाभावादयः पुंवेदस्य हेतवो विज्ञेयाः। बहुकषाय गुह्येंद्रियव्यपरोपण-स्त्रीपुरुषानंगक्रीड़ाव्यसनत्वशील-व्रतादिधारिप्रमथन-स्त्रीपशु-गमनतीव्ररागनिरंतरकामभोगाकांक्षा - करणानाचारादयो नपुंसकवेदास्रवस्य हेतवो मन्यव्याः।

बह्वारंभप्रवर्तनबहुपरिग्रहाभिलाषा मिथ्यात्वपथानुरागसप्त व्यसनित्वनिष्ठुरानृतवचन-परधनस्त्रीहरणतीव्रकषायित्व निदर्यत्वकृष्ण

आदि, शोक कर्म के आस्रव के कारण हैं। स्वयं भयभीत रहना, दूसरों को भयभीत करना, त्रासन, तर्जन, निर्दयता आदि भय वेदनीय के आस्रव के कारण हैं। कुशल क्रिया को करने वालों में ग्लानि, मलिनता से युक्त मुनिराज से ग्लानि, दूसरों की बदनामी आदि जुगुप्सा वेदनीय के आस्रव के कारण जानना चाहिए। अत्यधिक क्रोध-माया, बहु वंचन, मिथ्या भाषण, तीव्रराग, काम भोग में असंतोष, मूढ़ता, स्त्री का वेश धारण आदि स्त्री वेद के आस्रव के कारण हैं। मंद क्रोध, आर्जव, अभिमान का न होना, अल्पराग, स्वदारसंतोष, दान पूजा करना, भोग-उपभोग की वस्तुऐं नहीं चाहना, कूट भावों का अभाव आदि पुरुष वेद के आस्रव के कारण जानना चाहिए। तीव्र कषाय, गुप्त इन्द्रियों का विनाश, स्त्री और पुरुषों में अनंग क्रीड़ा का व्यसन, शील व्रत धारी पुरुषों को विचकाना स्त्री और पशुओं के साथ काम भोग की इच्छा, तीव्र राग, हमेशा काम भोग की इच्छा, अनाचार प्रवर्तन आदि नपुंसक वेद के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

बहु आरम्भ प्रवर्तन, बहुपरिग्रह अभिलाषा, मिथ्यात्व के मार्ग में अनुराग, सप्त व्यसन सेवन, निष्ठुरता, असत्य वचन, पर धन तथा परस्त्री

लेश्यातीव्रराग-सर्वेन्द्रियविषयलंपटत्वजिन-धर्मद्वेषकरण-पाप-पाण्डितत्व-यतिजनजुगुप्सा-कुशास्त्राभ्यसन-धर्मादिविघ्नकरण-नीचजनप्रसंग-रौद्रध्यानादयो नारकायुषः आस्रवहेतवो भवेयुः।

माया-परवंचनचातुर्यमिथ्यामार्गरतमूढत्वस्नानादिकरण-पशु तरूपूजन-बहुपापारंभप्रवर्तनलोभाकुलितचित्तनिःशीलत्व-कूट कर्मभूमिभेदसमरोषानर्थोद्भावनकृत्रिम-हेमादिकरण-जाति-कुल शील दूषणसद्गुणलोपासद्गुण-ख्यापनकुमार्गगमन-स्वेच्छाचरणकापोत लेश्यार्त्तध्यानादयस्तिर्यगायुरास्रव-कारणा भवन्ति।

स्वल्पारंभपरिग्रहत्वप्रकृतिभद्रतार्जवाचारधूलिराजिस-दृशरोष-निःकपटव्यवहारकारुण्याशयप्रदोष-कुकर्म-निर्वृत्ति-मधुरवचनौदासी न्यानसू-याल्पसंक्लेशदेवगुर्वादिपूजाकपोत-पीतलेश्याशुभध्यानादयो मनुष्यायुरास्रव-हेतुभूता ज्ञातव्याः।

हरण, तीव्र कषाय, निर्दयता, कृष्णलेश्या, तीव्रराग, पञ्चेन्द्रियों के विषयों में लंपटता, जिनधर्म से द्वेष, पाप कार्यों में पाण्डित्व, यतिजनों के प्रति ग्लानि भाव, कुशास्त्रों का अभ्यास, धार्मिक कार्यों में विघ्न, नीच लोगों की संगति तथा रौद्र ध्यान आदि नरकायु के आस्रव के कारण हैं।

मायाचार, दूसरों को ठगने में चतुर, मिथ्यामार्ग में प्रवृत्ति, मूढ़ता, गंगा स्नान, गाय-पशु एवं पीपल आदि वृक्ष की पूजन, बहुत पाप आरम्भ में प्रवृत्ति, लोभ से आकुलित चित्त, निःशीलता, कूटकर्म, पृथ्वी रेखा के समान क्रोधादि, अनर्थोद्भावन, कृत्रिम स्वर्णादि बनाना, जातिकुल एवं शील में दोष लगाना, दूसरों के सद्गुणों का लोप और असद् दोषों का प्रकाशन, कुमार्गगमन, स्वेच्छाचरण, कापोत लेश्या तथा आर्त ध्यान, तिर्यंचायु के आस्रव के कारण हैं।

अल्प आरम्भ, अल्प परिग्रह, प्रकृति भद्रता, आर्जव परिणाम, धूलि की रेखा के समान क्रोधादि, सरल व्यवहार, दयाभाव, प्रदोष निर्वृत्ति, दुष्ट कार्यों से निर्वृत्ति, मधुर वचन बोलना, औदासीन्यवृत्ति, ईर्ष्या रहित परिणाम, अल्प संक्लेश, देवता, गुरु आदि की पूजा करना, कापोत, पीत लेश्या के परिणाम, शुभ ध्यान आदि मनुष्य आयु के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

सरागसंयमसंयामासंयमबालतपश्चरणजितेंद्रियत्वनिः-कषायि-त्व-परीषहसहिष्णुत्वदृगव्रतशीलाचरणजिनभक्तिपात्रदानपूजनतत्परता वैराग्यभावना-धर्मोपदेशपापनिवारणध्यानाध्यय परोपकार धर्माचरण तत्परताविवेकत्वगुणानुराग-निर्गुणमध्यस्थक्षमार्जवमार्दवादयो देवायु - रास्रवस्य हेतवो विज्ञेयाः।

मनोवाक्कायवक्रताजिनेंद्रश्रुतमुनिधर्माद्यवर्णवादमिथ्यादर्शन पिशुनचल-चित्तकूटसाक्षित्वपरनिंदात्मप्रशंसानृतपरुषासभ्यसरागवचनपर कोतूहलोत्पादन प्रकटकरणपरद्रव्यादानमहारंभपरिग्रहत्वोज्वलवेष मदमात्सर्य परस्त्री वशीकरण-चैत्यपूजादानादि निषेधनपरिविडंबनोप हास्यादि करणदावाग्नि प्रयोगप्रतिमायतन प्रतिश्रयारामविनाशक्रूरकाया क्रोशवधबंधाद्यादर तीव्र कषायपाप कर्मजीवनादयोऽशुभनाम्नो निमित्ताः

सराग संयम, संयमासंयम, बालतप, जितेन्द्रियत्व, निष्कषाय, परिषहों को सहन करना, दिग्व्रत, शीलाचरण, जिन भक्ति, पात्र दान पूजन में तत्परता, वैराग्य भावना, धर्मोपदेश, पाप निवारण, ध्यान, अध्ययन, परोपकार, धर्माचरण में तत्परता, विवेक, गुणों में अनुराग, निर्गुणों के प्रति मध्यस्थ, क्षमा, आर्जव और मार्दव आदि देवायु के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

मन, वचन, काय की वक्रता, जिनेन्द्र देव, श्रुत, मुनि एवं धर्मादि का अवर्णवाद, मिथ्यादर्शन, पिशुनता, अस्थिरचित्त, झूठी गवाही, परनिंदा, आत्मप्रशंसा, झूठ, कठोर, असभ्य एवं राग युक्त वचन, दूसरों को कौतूहल उत्पन्न करने वाले कार्य करना, परद्रव्य हरण, बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह, शौकीन वेष का घमण्ड, मात्सर्य, परस्त्री वशीकरण प्रयोग, चैत्य पूजा, दानादि का निषेध, दूसरों को परेशान करना, हँसी आदि उड़ाना, दावाग्नि जलवाना, प्रतिमा आयतन विनाश, आश्रय विनाश, आराम विनाश, क्रूर कार्य, आक्रोश, वध बंधन आदि में आदर, तीव्र कषाय और पापकर्म जीविका आदि अशुभ नामकर्म के आस्रव के कारण होते हैं। अशुभ

भवन्ति। एते सर्वे विपरीताः शुभयोगादयः शुभनामस्रवस्य हेतवः मंतव्याः।

मूढ़त्रयादिपंचविंशतिदोषरहिताः निःशंकादिगुणोपेता दर्शन विशुद्धिः ज्ञानदर्शनचारित्रतपोगुरुभक्तिकरः विनयसम्पन्नता। शीलव्रतेषु निरवद्याचरणानतिचारः। सिद्धान्तपठनपाठनस्मरणादिरभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगः। संसारदेहभोगादिविरक्तिजनकः संवेगः। स्वशक्तया चतुर्विध दानकरणं त्यागः स्वशक्त्या द्वादशप्रकारं तपः। मुनिगणासमाधि निराकारकं साधुसमाधिः। निरवद्य-वैयावृत्याचार्यादि सुश्रुषा वैयावृत्य-करणम्। जिनपूजास्मरणस्तवाद्यनुरागोऽर्हद्भक्तिः। तद्वंदनाज्ञा-प्रतिपाल-नाद्यनुराग आचार्यभक्तिः। तन् नमस्कार-विनयकरणाद्यनुरागो बहुश्रुत-भक्तिः। जिनागमचिंतनपूजननिःशंकितत्वाद्यनुरागः प्रवचनभक्तिः। सामायिक चतुर्विंशतिस्तवैक तीर्थंकरपंचपरमेष्ठि वंदनाप्रतिक्रमण

नामकर्म के आस्रवों से विपरीत शुभ योग आदि शुभ नाम के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

तीन मूढ़ता आदि 25 दोषों से रहित निःशंकित आदि गुणों से सहित दर्शन विशुद्धि है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र एवं तप से युक्त गुरु की भक्ति करना विनय सम्पन्नता है। शील व्रतों में निर्दोष प्रवृत्ति शील व्रतेष्वनतिचार है। सिद्धान्त ग्रन्थों का पठन-पाठन स्मरणादि करना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग है। संसार, देह एवं भोगादि से विरक्त रहना संवेग है। अपनी शक्ति के अनुसार चार प्रकार का दान करना स्वशक्ति त्याग है। अपनी शक्ति के अनुसार बारह प्रकार का तप करना शक्तितस्तप है। मुनियों की असमाधि का निराकरण अर्थात् मुनियों की समाधि में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो तो उसको दूर करना साधु समाधि है। निर्दोष रीति से आचार्यादि की सेवा करना वैयावृत्यकरण है। जिनपूजन, स्मरण, स्तवन आदि में अनुराग अर्हद्भक्ति है। आचार्य वंदना, उनकी आज्ञा पालन आदि रूप अनुराग आचार्य भक्ति है। आचार्य आदि को नमस्कार, विनय आदि रूप में अनुराग बहुश्रुत भक्ति है। जिनागम चिंतन, पूजन निःशंकित आदि गुणों में अनुराग प्रवचन भक्ति है। सामायिक, चतुर्विंशति स्तव-एक

प्रत्याख्यानकायोत्सर्गाणामखंडाचरणं आवश्यकापरिहाणिः। तपो-ज्ञानादिभिः वा जैनधर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना। सधर्मिस्नेहः प्रवचन-वत्सलत्वं एताः षोडशभावनास्तीर्थंकर-प्रकृत्यास्रव हेतुभूता विज्ञेयाः।

परनिंदात्मप्रशंसात्मान्यसद्गुणोच्छादनासद्गुणोद्भावनस्वदोषोच्छादन-गुणाख्यापनजातिकुलैश्वर्यरूपज्ञानतपो-बलाज्ञामदकरणपरावज्ञापरि-वादगुरुधर्मिजनपरिभवजिनेन्द्रमुनितपस्वि गुणिजनाचार्यादि नमस्कारां-जलिस्तुत्यभ्युत्थानाद्यकरणावमानमात्सर्यादीनि नीचैर्गोत्रस्य कारणानि स्युः।

परगुणग्रहणपरनिंदापरन्मुखस्वनिंदाकरणस्वगुणाख्यापनदेवश्रुत-सधर्मिगुर्वादिनमस्कारप्रतिपत्त्यादिकरणकुलादिगर्वाभावधर्मशीलता निरहंकारविनय-वैयावृत्त्यमार्दवादयः उच्चैर्गोत्रस्य हेतवः निरूपिताः।

तीर्थङ्कर स्तव, पञ्चपरमेष्ठि वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग इन षट् आवश्यकों का निर्दोष पालन करना आवश्यकापरिहाणि है। तप, ज्ञान, दान, पूजा एवं प्रतिष्ठादि के द्वारा जैन धर्म का प्रकाशन करना मार्ग प्रभावना है। सधर्मिजनों में स्नेह करना प्रवचन वत्सलत्व है। ये सोलह भावनाएँ तीर्थङ्कर प्रकृति के आस्रव के कारण जानना चाहिए।

पर निंदा, आत्मप्रशंसा, दूसरों के सद् गुणों का आच्छादन, अविद्यमान गुणों का उद्भावन, अपने दोषों को छिपाना, गुणों को प्रकट करना, जाति, कुल, ऐश्वर्य, रूप, ज्ञान, तप, बल और आज्ञा आदि 8 का मद करना, पर की अवज्ञा, दूसरों की निंदा, गुरु एवं धार्मिक जनों का तिरस्कार, जिनेन्द्र देव, मुनि, तपस्वी, गुणीजन आचार्य आदि को नमस्कार, अंजलि स्तुति, आदर आदि में अवमान और मात्सर्य भाव होना ये सब नीच गोत्र के आस्रव के कारण हैं।

परगुण ग्रहण, परनिंदा परान्मुखता, अपनी निंदा करना, अपने गुणों को प्रकट नहीं करना, जिन देव, श्रुत, सधर्मि गुरु आदि को नमस्कार, आदर आदि करना, कुल आदि का गर्व नहीं करना, धर्मशीलता, निरहंकार, विनय, वैयावृत्य, मार्दव आदि भाव उच्च गोत्र के आस्रव के कारण कहे गए हैं।

दानपूजनजिनचैत्यालयबिम्बप्रतिष्ठादिषु विघ्नकरणपरवीर्या-पहरण-धर्मांतरायकुशलाचरणतपस्विगुरुपूजाव्याघातक्रियापरनिरोध परभोजनादिनिवारण बंधगुह्यकर्ण-नासिकादिछेदनान्यवियोगकरणा-दयाऽतंराय कर्मास्रवस्य हेतुभूता भवंति।

दान, पूजन, जिनचैत्यालय, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा आदि में विघ्न करना, दूसरों की शक्ति को प्रकट नहीं होने देना, धर्म विच्छेद करना, कुशल चारित्र वाले तपस्वी गुरु आदि की पूजा में व्याघात करना, परनिरोध, दूसरों को दिए जाने वाले भोजन आदि में विघ्न करना, बंधन, गुह्य अंगच्छेद, कर्णनासिकादि का काट देना, दूसरों का वियोग करा देना आदि अंतराय कर्म के आस्रव के कारण होते हैं।

ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध का कथन क्रमशः संक्षेप रीति से किया है। प्रकृतिबंध में कर्मबंध की गुणस्थानों में बंध अबंध योग्य प्रकृतियों का कथन किया है। जिस शैली से बंध अबंध की व्यवस्था ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में निरुपित की है उसी शैली का अनुशरण कर उदय-अनुदय की व्यवस्था निरुपित की जा रही है। इस व्यवस्था से पाठकों को उदय-अनुदय सम्बन्धी प्रकृतियों के नामोल्लेख उपलब्ध हो जायेंगे। अतः उदय आदि का निरूपण निम्न प्रकार है-

उदय योग्य प्रकृतियाँ - भेद विवक्षा से 148 प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं किन्तु अभेद विवक्षा से 122 प्रकृतियाँ उदय योग्य हैं। जो इस प्रकार हैं- 5 ज्ञानावरण, 9 दर्शनावरण, 2 वेदनीय, 28 मोहनीय, 4 आयु, चार गति, पाँच जाति, पाँच शरीर, तीन आंगोपांग, 6 संस्थान, 6 संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, 4 आनुपूर्वी, अगुरु-लघु, उपघात, परघात, उच्छवास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, अप्रशस्त विहयोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय,

यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण और तीर्थङ्कर इस प्रकार नाम कर्म की ये 67 प्रकृतियाँ, 2 गोत्र और 5 अंतराय।

मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में उदय, अनुदय एवं उदय व्युच्छित्ति योग्य प्रकृतियाँ-

मिथ्यात्व गुणस्थान में उपर्युक्त 122 प्रकृतियों में से तीर्थङ्कर, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन पाँच प्रकृतियों के बिना शेष 117 प्रकृतियों का उदय है। उपर्युक्त तीर्थङ्कर आदि 5 प्रकृतियों का अनुदय है। मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय इन 10 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

दूसरे सासादन गुणस्थान में उदय योग्य 122 प्रकृतियों में से तीर्थङ्कर, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, मिथ्यात्व, मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और नरकगत्यानुपूर्वी इन 16 प्रकृतियों के बिना शेष 106 प्रकृतियों का उदय है। उपर्युक्त तीर्थङ्करादि 16 प्रकृतियों का अनुदय है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क की उदय व्युच्छित्ति होती है।

तीसरे मिश्र गुणस्थान में उदय योग्य 122 प्रकृतियों में से तीर्थङ्कर, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, चारों आनुपूर्वी एवं अनंतानुबंधी चतुष्क इन 22 प्रकृतियों के बिना शेष 100 प्रकृतियों का उदय है। उक्त तीर्थङ्करादि 22 प्रकृतियों का अनुदय है। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उदय व्युच्छित्ति होती है।

चतुर्थ असंयत गुणस्थान में उदय योग्य 122 प्रकृतियों में से तीर्थङ्कर, आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग, मिथ्यात्व, सम्यमिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, विकलत्रय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) एवं अनंतानुबंधी चतुष्क इन 18 प्रकृतियों के बिना

शेष 104 प्रकृतियों का उदय है। उक्त तीर्थङ्करादि 18 प्रकृतियों का अनुदय है। अप्रत्याख्यानचतुष्क, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियकशरीरांगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच-गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय एवं अयशःकीर्ति इन 17 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

पञ्चम देशसंयत गुणस्थान में चतुर्थ गुणस्थान में उदय योग्य 104 प्रकृतियों में से अप्रत्याख्यानचतुष्क, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानु-पूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियिक-शरीरांगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय एवं अयशःकीर्ति इन 17 प्रकृतियों के बिना शेष 87 प्रकृतियों का उदय होता है। चतुर्थ गुणस्थान में अनुदय योग्य 18 प्रकृतियों में पूर्वोक्त अप्रत्याख्यान चतुष्क आदि 17 प्रकृतियाँ मिलाने पर 35 प्रकृतियों का अनुदय है। प्रत्याख्यानचतुष्क, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, नीचगोत्र एवं उद्योत, इन आठ प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

प्रमत्त संयत गुणस्थान में ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, वेदनीय 2, सम्यक्त्व, संज्वलन कषाय चतुष्क, नवनोकषाय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीर, औदारिक शरीर आंगोपांग, आहारकशरीरांगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, प्रत्येक, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुभग, सुभग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र एवं अंतराय 5 इन 81 प्रकृतियों का उदय है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुबंधीचतुष्क, अप्रत्याख्यानचतुष्क, प्रत्याख्यानचतुष्क, नरकगति, तिर्यंचगति, देवगति, नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, एकेन्द्रिय जाति, विकलत्रय, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक शरीर आंगोपांग, चार आनुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति, नीचगोत्र

और तीर्थङ्कर इन 41 प्रकृतियों का अनुदय है। आहारक शरीर, आहारक आंगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचलाप्रचला इन 5 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अप्रमत्त गुणस्थान में प्रमत्त गुणस्थान में उदय योग्य 81 प्रकृतियों में से आहारक द्विक (आहारक शरीर, आहारक शरीरांगोपांग) स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला इन 5 प्रकृतियों के बिना शेष 76 प्रकृतियों का उदय है। प्रमत्त गुणस्थान की अनुदय योग्य 41 प्रकृतियों में आहारक द्विक, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने पर 46 प्रकृतियों का अनुदय है। सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलक एवं असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन चार प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान में अप्रमत्त गुणस्थान में उदय योग्य 76 प्रकृतियों में से सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलक एवं असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन 4 प्रकृतियों के बिना शेष 72 प्रकृतियों का उदय है। अप्रमत्त गुणस्थान की अनुदय योग्य 46 प्रकृतियों में सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलक एवं असंप्राप्तासृपाटिका संहनन इन 4 प्रकृतियों को मिलाने पर 50 प्रकृतियों का अनुदय है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन 6 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में अपूर्वकरण गुणस्थान की उदय योग्य 72 प्रकृतियों में से हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इन 6 प्रकृतियों के बिना शेष 66 प्रकृतियों का उदय है। अपूर्वकरण गुणस्थान की अनुदय योग्य 50 प्रकृतियों में पूर्वोक्त हास्यादि 6 प्रकृतियों को मिलाने पर 56 प्रकृतियों का अनुदय है। स्त्री-पुरुष-नपुंसक वेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया इन 6 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान की उदय योग्य 66 प्रकृतियों में से तीन वेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया इन 6

प्रकृतियों के बिना शेष 60 प्रकृतियों का उदय है। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान की अनुदय योग्य 56 प्रकृतियों में तीन वेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया ये 6 प्रकृतियाँ मिलाने पर 62 प्रकृतियों का अनुदय तथा एक सूक्ष्म लोभ की उदय व्युच्छित्ति होती है।

उपशांत मोहगुणस्थान में सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान की उदय योग्य 60 प्रकृतियों में सूक्ष्म लोभ के बिना 59 प्रकृतियों का उदय है। सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान की अनुदय योग्य 62 प्रकृतियों में सूक्ष्मलोभ मिलाने पर 63 प्रकृतियों का अनुदय है तथा नाराच और वज्रनाराच संहनन इन दो प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

क्षीण मोह गुणस्थान में उपशांत मोह गुणस्थान की उदय योग्य 59 प्रकृतियों में नाराच, वज्रनाराच संहनन कम करने पर शेष 57 प्रकृतियों का उदय है। उपशांत मोह गुणस्थान में अनुदय योग्य 63 प्रकृतियों में नाराच व वज्रनाराच संहनन इन दो प्रकृतियों को मिलाने पर 65 प्रकृतियों का अनुदय है। ज्ञानावरण 5, चक्षु-अचक्षु-अवधि-केवलदर्शनावरण, निद्रा, प्रचला और अंतराय कर्म की पाँच इन 16 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है।

सयोग केवली गुणस्थान में वेदनीय दो, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर, औदारिक आंगोपांग, छह संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र इन 42 प्रकृतियों का उदय है। क्षीण मोह गुणस्थान में अनुदययोग्य 65 प्रकृतियों में से तीर्थङ्कर प्रकृति कम करने तथा ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, निद्रा, प्रचला, अंतराय 5 ये 16 प्रकृतियाँ मिलाने पर 80 प्रकृतियों का अनुदय है। वज्रर्षभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, तैजस-

कार्मण शरीर, संस्थान 6, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर इन 29 प्रकृतियों की उदय व्युच्छित्ति होती है।

अयोग केवली गुणस्थान में, सयोग केवली गुणस्थान में उदय योग्य प्रकृतियों में से वज्रर्षभ नाराच संहनन आदि 29 प्रकृतियों के बिना शेष 13 प्रकृतियों का उदय है। सयोग केवली गुणस्थान में अनुदय योग्य 80 प्रकृतियों में सयोग केवली गुणस्थान की व्युच्छिन्न 29 प्रकृतियों को मिलाने पर 109 प्रकृतियों का अनुदय है। 2 वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पञ्चेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्च गोत्र इन 13 प्रकृतियों की उदय व्युछित्ति होती है।

गुणस्थानों में उदय सम्बन्धी नियम -

आहारक शरीर और आहारक आंगोपांग का उदय प्रमत्त गुणस्थान में ही होता है। तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय सयोगी और अयोग केवली के ही हैं। मिश्र मोहनीय का उदय सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में ही है। सम्यक्त्व प्रकृति का उदय असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि के ही है। आनुपूर्वी का उदय मिथ्यादृष्टि, सासादन और असंयत गुणस्थान में ही है। अन्यत्र इनके उदय का अभाव है। सासादन सम्यग्दृष्टि मरणकर नरकगति में नहीं जाता है इसी कारण उसके सासादन गुणस्थान में नरकगत्यानुपूर्वी का उदय नहीं है तथा शेष प्रकृतियों का उदय मिथ्यात्वादि गुणस्थानों में अपने-अपने उदय स्थान के अंत समयपर्यंत जानना।

गुणस्थानों में उदय, अनुदय एवं उदय व्युच्छित्ति प्रकृतियों की संदृष्टि

गुणस्थान	उदय	अनुदय	उदय व्युच्छित्ति
मिथ्यात्व	117	5	10 (मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय)
सासादन	106	16	4 (अनन्तानुबन्धीचतुष्क)
मिश्र	100	22	1 (सम्यग्मिथ्यात्व)
असंयत	104	18	17 (अप्रत्याख्यानचुतुष्क, देवगति, देव गत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियकशरीरांगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, व अयशःकीर्ति)
देशसंयत	87	35	8 (प्रत्याख्यानचतुष्क, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, नीचगोत्र, उद्योत)
प्रमत्तसंयत	81	41	5 (आहारकशरीर, आहारक आंगोपांग, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला)
अप्रमत्तसंयत	76	46	4 (सम्यक्त्व, अर्धनाराच, कीलक, असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन)
अपूर्वकरण	72	50	6 (हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा)
अनिवृत्ति-करण	66	56	6 (स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया)
सूक्ष्मसाम्पराय	60	62	1 (सूक्ष्मलोभ)
उपशांतमोह	59	63	2 (नाराच व वज्रनाराचसंहनन)
क्षीणमोह	57	65	16 (ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, निद्रा, प्रचला और अंतराय पाँच)
सयोगकेवली	42	80	29 (वज्रर्षभनाराचसंहनन, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, तैजस-कार्मणशरीर, संस्थान 6, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छवास और प्रत्येक शरीर)
अयोगकेवली	13	109	13 (साता-असातावेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र)

कर्मणां क्षयकर्त्तारं, त्रिजगत्स्वामिनं जिनं।

प्रणम्य प्रकृतीनां वक्ष्ये क्षयं कर्महानये॥

अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभाः मिथ्यात्वं सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं नरकायुः तिर्यगायुः देवायुः एता दशप्रकृतयो असंयतसम्यग्दृष्टिः संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयतो वा क्रमेण क्षपयति।

कर्म को क्षय करने वाले, तीनों जगत के स्वामी, जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके मैं अपने कर्मों के क्षय करने के लिए कर्म प्रकृतियों की क्षयविधि को कहूँगा।

अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति, नरकायु, तिर्यञ्चायु और देवायु इन दश प्रकृतियों का असंयत सम्यग्दृष्टि देशसंयत, प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्त संयत क्रमशः क्षय करता है।

विशेषार्थ : नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु के सत्त्व बिना कोई चरम शरीरी जीव परिणामों की विशुद्धि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता हुआ असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त संयत इन चार गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थान में मोहनीय की अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन 7 प्रकृतियों का क्रमशः क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर क्षपक श्रेणी पर आरोहण करने के लिए सम्मुख होता हुआ अप्रमत्त संयत गुणस्थान में अधः प्रवृत्तकरण को प्राप्त होकर अपूर्वकरण के प्रयोग द्वारा अपूर्वकरण क्षपक गुणस्थान को प्राप्त करता है।

अनिवृत्तिकरण की प्राप्ति के द्वारा अनिवृत्ति बादरसाम्पराय गुणस्थान पर आरोहण करके स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, नरकगति, तिर्यंचगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगति प्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इन सोलह प्रकृतियों का अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के

स्त्यानगृद्धिनिद्रा-निद्राप्रचला-प्रचलानरकगतिः तिर्यग्गतिः एकेन्द्रियजातिः द्वीन्द्रियजातिः त्रीन्द्रियजातिः चतुरिन्द्रियजातिः नरकगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यं तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्व्यं आतपः उद्योतः स्थावरः सूक्ष्मः साधारणः एताः षोडशप्रकृतीः अनिवृत्तिगुणस्थानस्य प्रथमभागे संयुतः क्षपयति। द्वितीयभागे अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणा अष्टौ कषायाश्च तृतीयभागे नपुंसकवेदं चतुर्थभागे स्त्रीवेदं पंचमभागे हास्यादिषट्कं षष्टभागे पुंवेदं सप्तमभागे संज्वलनक्रोधं अष्टमभागे संज्वलनमानं नवमभागे संज्वलनमायां क्षपयति।

ततः सूक्ष्मसाम्परायगुणस्थाने सूक्ष्मलोभं क्षपयति।

ततः क्षीणकषायस्य द्विचरमसमये निद्रा-प्रचला-प्रकृतीः क्षीण कषायी क्षपयति। ततोऽनन्तरं पंचज्ञानावरणानि चक्षुरचक्षुरवधिकेवल-दर्शनावरणानि पंचांतरायाः एताश्च चतुर्दश प्रकृतीस्तस्यैव गुणस्थाने उपान्तसमये एताः त्रिषष्टिप्रकृतीः क्षपयित्वा सयोगिकेवलीजिनो भवति।

प्रथम भाग में एक साथ क्षय करता है। द्वितीय भाग में अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यान क्रोध-मान-माया और लोभ इन आठ कषायों का क्षय करता है।

तृतीय भाग में नपुंसकवेद चतुर्थ भाग में स्त्रीवेद, पञ्चमभाग में हास्यादि छह नोकषाय, छठेभाग में पुरुषवेद, सातवें भाग में संज्वलन क्रोध, आठवें भाग में संज्वलन मान और नवें भाग में संज्वलन माया का क्षय करता है। सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशवें गुणस्थान में संज्वलन लोभ का क्षय करता है।

क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान के द्विचरम समय में क्षीण कषायी जीव निद्रा और प्रचला का क्षय करता है। इसके बाद इसी गुणस्थान के अंतिम समय में पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण एवं पाँच अंतराय इन चौदह प्रकृतियों का क्षय करके सयोगकेवलीजिन होता है।

सयोगकेवलीजिन किसी भी प्रकृति का क्षय नहीं करते हैं।

सयोगिकेवलिजिनो न किमपि क्षपयति। अयोगिकेवलिजिनो देवगतिः पंचशरीराणि पंचशरीरसंघाताः पंचशरीरबंधनानि त्र्यंगोपांगानि षट्संस्थानानि षट्संहनानि पंचवर्णाः द्विगंधाः पंचरसाः अष्टस्पर्शाः देवगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यं अगुरुलघुः उपघातः परघातः उच्छ्वासः द्विधा-विहायोगतिः अपर्याप्तिः प्रत्येकः स्थिरः अस्थिरः शुभः अशुभः दुर्भगः सुस्वरः दुस्वरः अनादेयः अयशःकीर्तिः असातावेदनीयं नीचैर्गोत्रं निर्माणं एता द्वासप्तति प्रकृतीः असयोगकेवली द्विचरम-समये क्षपयति। ततः आदेयः मनुष्यगतिः मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्व्यं पंचन्द्रियजातिः मनुष्यायुः पर्याप्तिः त्रसः बादरः सुभगः यशःकीर्तिः सातावेदनीयं उच्चैर्गौत्रं तीर्थकरत्वं एतास्त्रयोदशप्रकृतीः अयोगकेवलीगुणस्थाने चरमसमये क्षपयति। ततो जीवोऽष्टगुणमयोनंतसुखसम्पन्नः सिद्धो भवति।

अयोगकेवलीजिन द्विचरम समय में इन 72 प्रकृतियों का क्षय करते हैं- देवगति, पाँचशरीर, पाँचशरीरसंघात, पाँचशरीर बंधन, तीन आंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस, आठ स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्ताप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, असातावेदनीय निर्माण एवं नीचगोत्र। इसके बाद सातावेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, पर्याप्त, त्रस, बादर, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र इन तेरह प्रकृतियों का क्षय अयोग केवली गुणस्थान के अंतिम समय में होता है। इसके बाद जीव अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य, अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व इन अष्टगुणों से युक्त होता हुआ सिद्ध होता है।

विशेष : मिथ्यात्व गुणस्थान में सभी 148 प्रकृतियों का सत्त्व है। इस गुणस्थान में असत्त्व एवं सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

सासादन गुणस्थान में आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृति के

बिना 145 प्रकृतियों का सत्त्व है। उक्त आहारक आदि 3 प्रकृतियों का असत्त्व है तथा सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

मिश्र गुणस्थान में तीर्थङ्कर प्रकृति के बिना 147 प्रकृतियों का सत्त्व है। एक तीर्थङ्कर प्रकृति का असत्त्व है तथा सत्त्व व्यच्छित्ति का अभाव है।

असंयत गुणस्थान में सभी 148 प्रकृतियों का सत्त्व है। असत्त्व का अभाव है तथा नरकायु की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

संयतासंयत गुणस्थान में नरकायु बिना 147 प्रकृतियों का सत्त्व है। एक नरकायु का असत्त्व है तथा एक तिर्यञ्चायु की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में नरकायु एवं तिर्यंचायु के बिना 146 प्रकृतियों का सत्त्व है। नरकायु, तिर्यंचायु इन दो प्रकृतियों का असत्त्व है। सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में नरकायु, तिर्यंचायु के बिना 146 प्रकृतियों का सत्त्व है। इन्हीं दो प्रकृतियों का असत्त्व है। अनंतानुबंधी चतुष्क, देवायु, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन आठ प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान में नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु, अनंतानुबंधी चतुष्क, दर्शनमोहनीय की तीन इन 10 प्रकृतियों के बिना 138 प्रकृतियों का सत्त्व है। ऊपर कही गईं 10 प्रकृतियों का असत्त्व। सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में (क्षपक श्रेणी वाले) के अपूर्वकरण गुणस्थान के समान 138 प्रकृतियों का सत्त्व है। अपूर्वकरण गुणस्थान के समान 10 प्रकृतियों का असत्त्व है। नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-

प्रचला, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म और स्थावर इन 16 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के द्वितीय भाग में प्रथम भाग की 138 प्रकृतियों में से उपर्युक्त 16 प्रकृतियों के बिना 122 प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है। अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में असत्त्व योग्य उक्त नरकगति आदि 16 प्रकृतियों के मिलाने पर 26 प्रकृतियों का असत्त्व है। अप्रत्याख्यानचतुष्क एवं प्रत्याख्यानचतुष्क इन 8 प्रकृतियों की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के तृतीय भाग में अनंतानुबंधी-अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानक्रोध-मान-माया-लोभ, दर्शनमोहनीय की तीन, एकेन्द्रियादि चार जातियाँ, नरक-तिर्यंच-देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, स्त्यानगृद्धि आदि 3 निद्राएँ, उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म एवं स्थावर इन 34 प्रकृतियों के बिना शेष 114 प्रकृतियों का सत्त्व है। उपर्युक्त कथित 34 प्रकृतियों का असत्त्व है। नपुंसक वेद की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के चतुर्थ भाग में तृतीय भाग की सत्त्व योग्य 114 प्रकृतियों में से नपुंसक वेद के बिना 113 प्रकृतियों का सत्त्व है। तृतीय भाग की असत्त्व योग्य 34 प्रकृतियों में नपुंसकवेद को मिलाने पर 35 प्रकृतियों का असत्त्व है तथा स्त्रीवेद की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के पञ्चम भाग में चतुर्थ भाग की सत्त्व योग्य 113 प्रकृतियों में से स्त्रीवेद के बिना 112 प्रकृतियों का सत्त्व है। चर्तुथभाग में असत्त्वयोग्य 35 प्रकृतियों में स्त्रीवेद को मिलाने पर 36 प्रकृतियों का असत्त्व है तथा हास्यादि 6 नोकषाय की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के षष्टम भाग में पञ्चम भाग की 112 प्रकृतियों में से हास्यादि 5 नोकषाय के बिना 106 प्रकृतियों का सत्त्व है। पञ्चमभाग की असत्त्वयोग्य 36 प्रकृतियों में उपर्युक्त 6 प्रकृतियाँ मिलाने पर 42 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है तथा पुरुषवेद की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के सप्तम भाग में षष्टम भाग की 106 प्रकृतियों में से पुरुषवेद के बिना शेष 105 प्रकृतियों का सत्त्व है। षष्टम भाग की 42 असत्त्व प्रकृतियों में पुंवेद मिलाने पर 43 प्रकृतियों का असत्त्व है। संज्वलन क्रोध की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के अष्टमभाग में सप्तम भाग की 105 प्रकृतियों में से संज्वलन क्रोध को कम करने पर 104 प्रकृतियों का सत्त्व है। सप्तमभाग की असत्त्व 43 प्रकृतियों में संज्वलन क्रोध को मिलाने पर 44 प्रकृतियों का असत्त्व होता है तथा संज्वलन मान की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

अनिवृत्तिकरण के नवमभाग में अष्टम भाग की 104 प्रकृतियों में से संज्वलन मान के बिना शेष 103 प्रकृतियों का सत्त्व है। अष्टमभाग की असत्त्व 44 प्रकृतियों में संज्वलन मान को मिलाने पर 45 प्रकृतियों का असत्त्व पाया जाता है तथा संज्वलन माया की सत्त्व व्यच्छित्ति होती है।

सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के नवम भाग की 103 प्रकृतियों में से संज्वलन माया के बिना 102 प्रकृतियों का सत्त्व पाया जाता है। नवम भाग की असत्त्व 45 प्रकृतियों में संज्वलन माया मिलाने पर 46 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है तथा संज्वलन लोभ की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

क्षीण मोह गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान की सत्त्व 102 प्रकृतियों में से संज्वलन लोभ के बिना शेष 101 प्रकृतियों का सत्त्व होता है। सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान की असत्त्व योग्य 46 प्रकृतियों में संज्वलन लोभ मिलाने पर 47 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है। ज्ञानावरण 5, चक्षु आदि चार और निद्रा, प्रचला में छह दर्शनावरण और अंतराय 5 इन 16 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

सयोग केवली गुणस्थान में वेदनीय दो, मनुष्यायु, मनुष्यगति, देवगति, पञ्चेन्द्रिय जाति, 5 शरीर, 5 बंधन, 5 संघात, 6 संस्थान, 6

संहनन, 3 आंगोपांग, 8 स्पर्श, 5 रस, 2 गंध, 5 वर्ण, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, निर्माण, तीर्थङ्कर, नीचगोत्र एवं उच्चगोत्र इन 85 प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। 5 ज्ञानावरण, 9 दर्शनावरण, 28 मोहनीय, नरकायु, देवायु, तिर्यंचायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंच - गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर और 5 अंतराय इन 63 प्रकृतियों का असत्त्व रहता है। यहाँ सत्त्व व्युच्छित्ति का अभाव है।

अयोगकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय में सयोग केवली गुणस्थान के समान 85 प्रकृतियों का सत्त्व है। सयोग केवली गुणस्थान के ही समान 63 प्रकृतियों का असत्त्व है। 5 शरीर, 5 बंधन, 5 संघात, 6 संस्थान, 6 संहनन, 3 आंगोपांग, 8 स्पर्श, 5 रस, 2 गंध, 5 वर्ण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशःकीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, असातावेदनीय और नीचगोत्र इन 72 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

अयोग केवली के अंतिम समय में सातावेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थङ्कर और उच्चगोत्र इन 13 प्रकृतियों का सत्त्व रहता है। 148 प्रकृतियों में से इन 13 प्रकृतियों के बिना शेष 135 प्रकृतियों की असत्त्व जानना चाहिए तथा उक्त 13 प्रकृतियों की सत्त्व व्युच्छित्ति होती है।

गुणस्थानों में सत्त्व सम्बन्धी नियम- मिथ्यात्व गुणस्थान में जिसके तीर्थङ्कर प्रकृति का सत्त्व है उसके आहारकद्विक का सत्त्व नहीं

होता तथा जिसके आहारक द्विक का सत्त्व होता है उसके तीर्थङ्कर प्रकृति का सत्त्व नहीं होता है। जिसके आहारकद्विक और तीर्थङ्कर प्रकृति का युगपत् सत्त्व पाया जाता है उसके मिथ्यात्व गुणस्थान नहीं होता अतः मिथ्यात्व गुणस्थान में एक जीव की अपेक्षा आहारक द्विक और तीर्थङ्कर प्रकृति का युगपत सत्त्व न होकर एक का ही सत्त्व रहता है तथा नाना जीवों की अपेक्षा दोनों का सत्त्व पाया जाता है। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान में 148 प्रकृतियों का सत्त्व नानाजीवों की अपेक्षा होता है। सासादन गुणस्थान में एक जीव अथवा नाना जीवों की अपेक्षा क्रम से या युगपत् तीर्थङ्कर और आहारक द्विक का सत्त्व नहीं होने से 145 प्रकृतियाँ सत्त्व योग्य हैं। मिश्र गुणस्थान में एक तीर्थङ्कर प्रकृति का सत्त्व न होने से 147 प्रकृतियों का सत्त्व है, क्योंकि इन प्रकृतियों का जिनके सत्त्व पाया जाता है उनके वह गुणस्थान नहीं होता।

चारों ही गतियों में से किसी भी आयु का बन्ध होने पर सम्यक्त्व होता है, किन्तु देवायु के बिना अन्य तीन आयु का बंध करने वाला अणुव्रत-महाव्रत धारण नहीं कर सकता।

नरक, तिर्यंच तथा देवायु का सत्त्व होने पर क्रम से देशव्रत, महाव्रत और क्षपक श्रेणी नहीं होती है।

गुणस्थानों में सत्त्व, असत्त्व एवं सत्त्वव्युच्छित्ति की संदृष्टि

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति
मिथ्यात्व	148	0	0
सासादन	145	3	0
मिश्र	147	1	0
असंयत	148	0	1 (नरकायु)
देशसंयत	147	1	1 (तिर्यंचायु)

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व	सत्त्व व्युच्छित्ति
प्रमत्त संयत	146	2	0
अप्रमत्त	146	2	8 (अनन्तानुबंधी 4, देवायु, दर्शन मोहनीय की 3)
संयत	138	10	0
अपूर्वकरण	138	10	16 (नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, विकलत्रय 3, स्त्यानगृद्धि आदि 3 निद्रा, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर)
अनिवृत्तिकरण क्षपक प्रथम भाग			
द्वितीय भाग	122	26	8 (अप्रत्याख्यान 4 और प्रत्याख्यान 4)
तृतीय भाग	114	34	1 (नपुंसकवेद)
चतुर्थ भाग	113	35	1 (स्त्रीवेद)
पंचम भाग	112	36	6 (हास्यादि नोकषाय)
षष्टम भाग	106	42	1 (पुरुषवेद)
सप्तमभाग	105	43	1 (संज्वलन क्रोध)
अष्टमभाग	104	44	1 (संज्वलन मान)
नवमभाग	103	45	1 (संज्वलन माया)
सूक्ष्मसाम्प-राय क्षपक	102	46	1 (संज्वलन लोभ)
क्षीणमोह	101	47	16 (5 ज्ञाना., 4 दर्शनावरण, 5 अंतराय, निद्रा, प्रचला)
सयोगकेवली	85	63	0
अयोगकेवली के द्विचरम समय में	85	63	72 (5 शरीर, 5 बंधन, 5 संघात, 6 संहनन, 3 आंगोपांग, 6 संस्थान, 5 वर्ण, 2 गंध, 5 रस, 8 स्पर्श, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयशःकीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, असाता वेदनीय, नीचगोत्र)
अयोग केवली के चरम समय में	13	135	13 (सातावेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, मनुष्यगत्यानुपूर्वी)

पठतीमं हि यो ग्रंथं कर्मस्वभावसूचकं।
कर्मारीन् स परिज्ञाय, हत्वा यातिः शिवं सुधीः॥
अखिलविधिविमुक्तान्, विश्वलोकाग्रवासान्।
निरुपमसुखावाद्धीन् ज्ञानमूर्तीन् विदेहान्॥
वसुवरगुणविभूषान्, सिद्धनाथाननंतान्।
सकलपरमकीर्त्या, संस्तुवे तद्गुणाप्त्यैः॥

इत्याचार्यश्रीसकलकीर्तिदेवविरचितः कर्मविपाकग्रंथः समाप्तः।

जो कर्मों के स्वभाव का निरूपण करने वाले इस ग्रन्थ को पढ़ता है, वह बुद्धिमान कर्मरूपी शत्रुओं को जानकर तथा उन्हें नष्ट करके मोक्षपद को प्राप्त करता है।

सम्पूर्ण कर्मों से रहित, लोकाकाश के अग्रभाग में विराजमान, उपमा से रहित सुख को प्राप्त, ज्ञान मूर्ति, देह रहित, आठ उत्कृष्ट गुणों से सुशोभित, सम्पूर्ण उत्कृष्ट गुणों से प्रसिद्ध ऐसे अनंत सिद्ध परमेष्ठी की उनके सदृश गुणों की प्राप्ति के लिए मैं (सकलकीर्ति आचार्य) स्तुति करता हूँ।

इस प्रकार आचार्य श्री सकलकीर्ति देव रचित कर्मविपाक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

पाण्डुलिपियों का परिचय

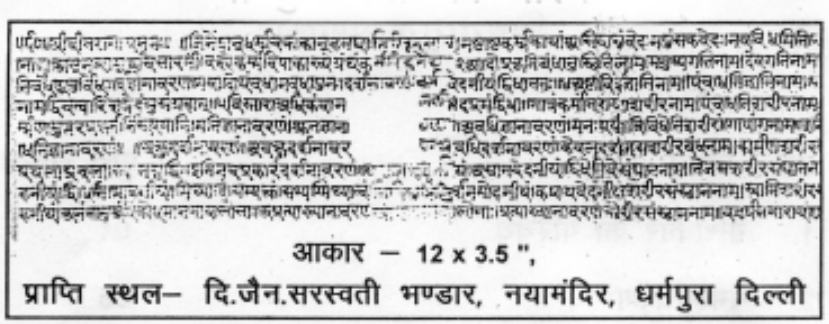

आकार – 12 x 3.5 ",
प्राप्ति स्थल– दि.जैन.सरस्वती भण्डार, नयामंदिर, धर्मपुरा दिल्ली

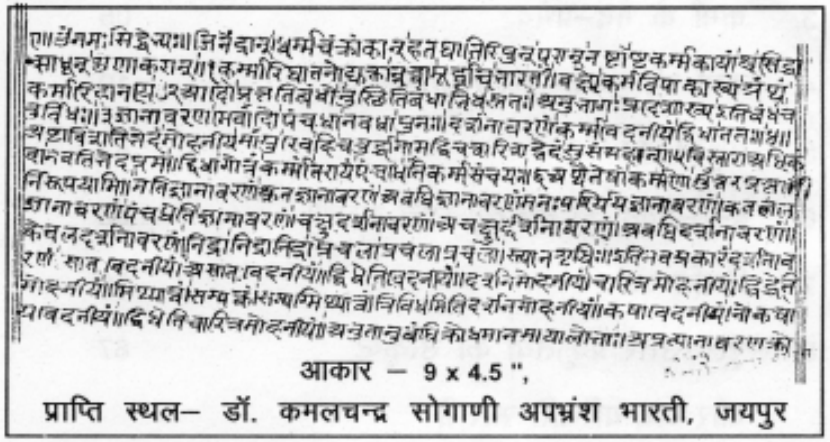

आकार – 9 x 4.5 ",
प्राप्ति स्थल– डॉ. कमलचन्द्र सोगाणी अपभ्रंश भारती, जयपुर

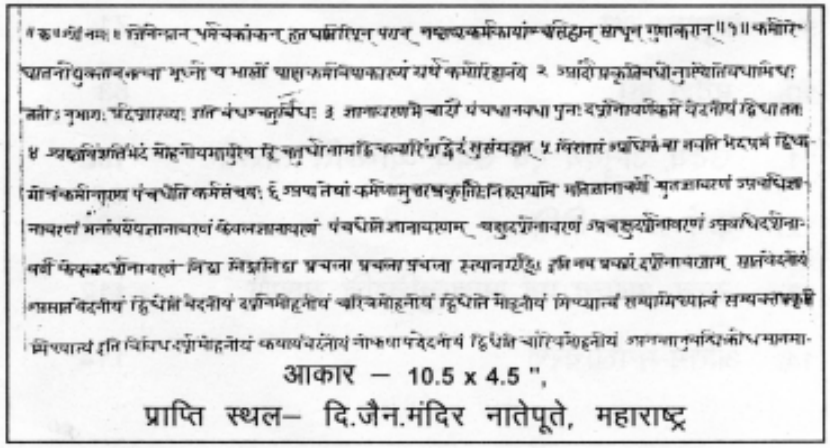

आकार – 10.5 x 4.5 ",
प्राप्ति स्थल– दि.जैन.मंदिर नातेपूते, महाराष्ट्र

ब्र. विनोद जैन एवं ब्र. अनिल जैन द्वारा अनुवादित/सम्पादित कृतियाँ

1.	सिद्धान्तसार	:	आचार्य जिनचन्द्र	प्रकाशित
2.	प्रकृति परिचय	:	संकलन	प्रकाशित
3.	ध्यानोपदेश कोश	:	आचार्य गुरुदास	प्रकाशित
4.	भाव त्रिभंगी	:	आचार्य श्रुतमुनि	प्रकाशित
5.	परमागम सार	:	आचार्य श्रुतमुनि	प्रकाशित
6.	लघु नयचक्र	:	आचार्य देवसेन	प्रकाशित
7.	ध्यानसार	:	श्री यशःकीर्ति	प्रकाशित
8.	श्रुत स्कन्ध	:	ब्रह्म हेमचन्द्र	प्रकाशित
9.	आस्रव त्रिभंगी	:	आचार्य श्रुतमुनि	प्रकाशित
10.	सच्चे सुख का मार्ग	:	सम्पादन	प्रकाशित
11.	वर्णी दैनंदिनी	:	सम्पादन	प्रकाशित
12.	ज्ञानलोचन एवं बाहुबली स्तोत्रम्	:	श्री वादिराज कवि एवं अज्ञात कर्तृक	प्रकाशित
13.	अर्हत् प्रवचनम्	:	श्री प्रभाचन्द्र	प्रकाशित
14.	कर्म विपाक	:	आचार्य सकलकीर्ति	प्रकाशित
15.	वर्णी विचार (1938)	:	श्री गणेशप्रसाद वर्णी	प्रकाशित
16.	धवला पारिभाषिक कोश	:	संकलन	अप्रकाशित
17.	जीवकाण्ड (प्रश्नोत्तरी)	:		अप्रकाशित
18.	चरणानुयोग प्रवेशिका	:		अप्रकाशित
19.	जैनेन्द्र लघु प्रक्रिया	:	आचार्य पूज्यपाद	अप्रकाशित
20.	पंच संग्रह	:	अज्ञात कर्तृक	अप्रकाशित
21.	सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन	:	संकलन	अप्रकाशित
22.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (टीका)	:	अज्ञात कर्तृक	अप्रकाशित
23.	तत्त्व विचार	:	आचार्य वसुनंदि	अप्रकाशित
24.	द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी	:		अप्रकाशित
25.	तत्त्वार्थसार दीपक	:	आचार्य सकलकीर्ति	अप्रकाशित